सम्मान का पानी लाने वाली

भगाणी–तिलदेह नदी

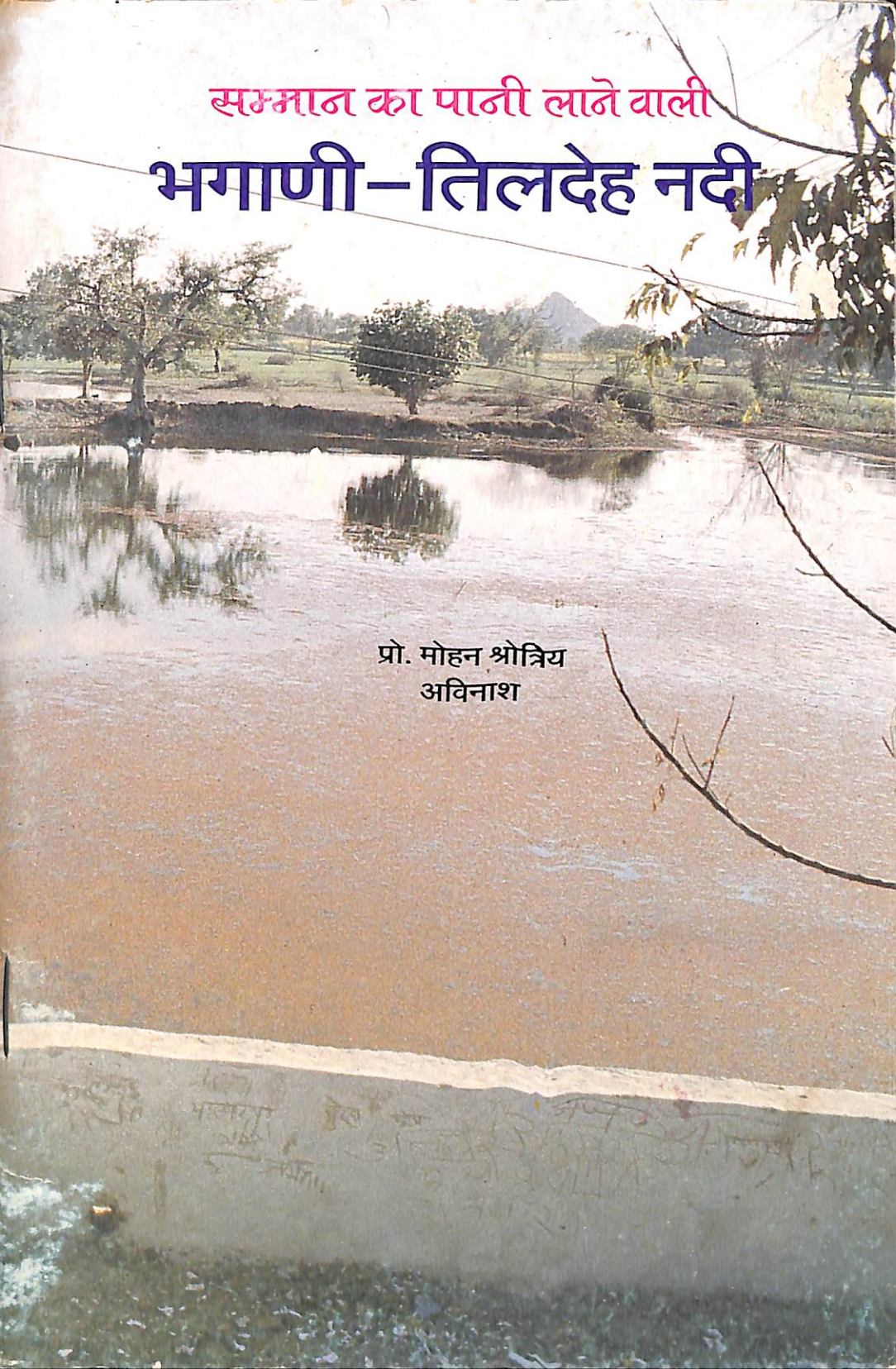

प्रो. मोहन श्रोत्रिय
अविनाश

मांडलवास के पास पेड़ लगाओ, पेड़ बचाओ पदयात्रा करते लोग

कान्यास गांव व पास में बना जोहड़

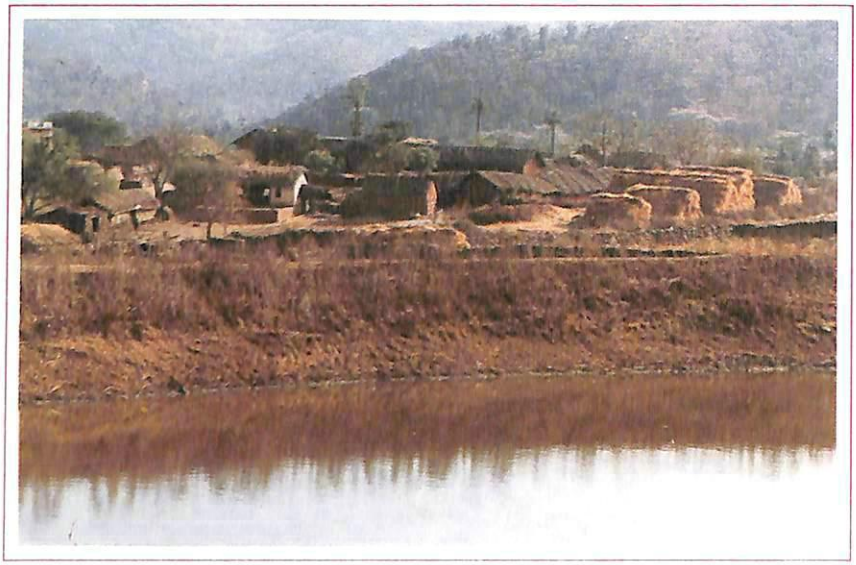

प्रस्तावना

भगाणी नदी सौ वर्ष पहले तक बहती थी। इसको तांबे की गहरी खान ने बहने से रोका था। भगाणी के जलागम क्षेत्र में तांबे की खानें लम्बे समय तक चलती रहीं। एक दिन अचानक नदी के स्रोत पर धमाका हुआ। ऊपर बहने वाली नदी का रुख खान की तरफ मुड़ गया। खान में पानी के वेग ने कुछ लोगों की जान लेकर खनन कार्य उसी दिन बन्द करा दिया । वह तो आज तक बन्द है। साथ ही जमीन के ऊपर बहने वाली धारा भी बन्द हो गई थी। उन दिनों जंगलात महकमा अलवर सरिस्का जंगल को 'शिकारगाह' बनाने तथा इसका अच्छा प्रबन्ध करने हेतु 'रूंध' बनाने की घोषणाएं कर रहा था।

एक लम्बा दौर ऐसा आया जबकि भगाणी नदी के क्षेत्र में जंगल भी नहीं रहे, लोगों तथा पशुओं को पीने का पानी तक नहीं बचा था। लोग पलायन कर चुके थे। जंगली व पालतू पशु मर रहे थे। दूसरी तरफ नेता, व्यापारी, अधिकारी मिलकर सरिस्का के जंगल तथा पत्थरों की लूट की होड़ में शामिल थे। अधिकारियों की मिलीभगत से सरदारसिंह बावरिया ने पन्द्रह बाघ मारे थे। सरिस्का के कालाखेर, कदम की लकड़ी के ट्रक दिल्ली पहुँच रहे थे। पत्थरों और खनिजों की खानों के पट्टे लेकर राष्ट्र के ऊंचे से ऊंचे कद वाले नेता तथा राज्य के सर्वोच्च नेता व अधिकारी सरिस्का में सफलतापूर्वक मार्बल की खदानें चला रहे थे। व्यापारी एक खान के लिए खनन पट्टा प्राप्त करने हेतु और एक अतिरिक्त खान गैर-कानूनी तौर पर चलाने के लिए आवश्यक धन अधिकारियों को उनके परिजनों - पुत्रों, पुत्रवधुओं, पुत्रियों, पत्नियों के नाम पर मुहैया कराने में जुटे थे। सरिस्का में खान देने हेतु सभी कानूनों को दांव पर लगा दिया गया था। सिर्फ अनापत्ति प्रमाण-पत्र जारी करने के नाम पर पांच हजार रुपया तो क्षेत्रीय वन अधिकारी ही वसूल लेता था।

इस काल को सरिस्का के लिए अंधकार युग की संज्ञा दी जा सकती है। जबकि सरिस्का का यह क्षेत्र भूजल के रिकार्ड में भी **डार्क ज़ोन** घोषित हो चुका था। इसे **डार्क ज़ोन** से **व्हाइट ज़ोन** में बदलने के लिए काम करने वाले तरुण भारत संघ के कार्यकर्ताओं पर सरिस्का के जंगल में जाने की पाबन्दी थी। यदि कोई कार्यकर्त्ता चला जाता था तो उस पर शिकार करने का फर्जी मुकदमा चलवा दिया जाता था। 13 मई 1988 के दिन मुझ पर भी

शिकार करने का आरोप जड़ा गया था। दूसरी तरफ एक सरकारी रिकार्ड में मैं उसी दिन चिड़ावतों के गुवाड़ा इन्दोक गांव के पास तरुण भारत संघ के संचालक मंडल की बैठक में सरिस्का जंगल व जंगली जीव बचाने के लिए काम करने की दिशा में काम करने के प्रस्ताव पर चर्चा करता हुआ दर्ज था। इसी आधार पर वह मुकदमा आगे नहीं चल सका। अन्यथा उस झूठे मुकदमे में पेशी अदालत में आज तक साधता रहता। यह केस तभी खत्म हो जाने पर हमारी ऊर्जा तथा सत्य के प्रति निष्ठा बढ़ गई।

हमारी सत्यनिष्ठा तथा परिश्रम के कारण आज भगाणी नदी को पुनः सजल होते देखकर हम हमारे समाज की श्रमनिष्ठा के प्रति आस्थावान् बन गये। भगाणी नदी का सर्वोपरि हिस्सा दक्षिण से उत्तर की तरफ बहने वाला पुराने पारानगर (नीलकण्ठ) के दक्षिण से आरम्भ होता है। यह सघन जंगलों से भरापूरा पुरातत्व की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण पठारी क्षेत्र है। यह स्थान महाभारत के 'लाक्षागृह' से लेकर कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार राजाओं के राज की उथल-पुथल की कहानियां आज भी यहां पहुंचते ही सुनाने लगता है। यहां हजारों की संख्या में बिखरी मूर्तियां इस स्थान की प्राचीनता को प्रकट कर देती हैं। यह निश्चित ही कभी बड़े राज की राजधानी रहा है। अब यहां 10 जोगियों के तथा 15 मीणा, एक नाई और दो ब्राह्मण परिवार ही रहते हैं। यहां के बनवारी सेन तथा महेश शर्मा ने **तरुण भारत संघ** के साथ जुड़कर अपने गांव तथा क्षेत्र के बच्चों को पढ़ाने का संकल्प लिया तब यहां सरकारी स्कूल नहीं था। यह बात 1987 की है।

1985 में पहली बार इस गांव में **तरुण भारत संघ** कार्यकर्त्ता सतेन्द्रसिंह गये थे। सतेन्द्र ने रायपुरा भाल गांव में सबसे पहले स्कूल शुरू किया था। वहां के लोगों ने स्कूल बन्द करा दिया था, सतेन्द्र ने वापस लौटने पर गोपालपुरा-गोविन्दपुरा में काम शुरू किया था, गोपालपुरा-गोविन्दपुरा का काम देखकर माण्डलवास के लोगों ने भी अपने गांव में भी बच्चों को पढ़ाने तथा जोहड़ बनाने की पेशकश की थी। तब मैं स्वयं उस गांव में गया था। कुछ दिन वहां रहा था। फिर बाबूलाल-मुन्नालाल ने वहां बच्चे पढ़ाने का काम किया। डा. गजराजसिंह ने चिकित्सा सेवा का कार्य वहां शुरू किया। तभी जोहड़ निर्माण का काम शुरू हो गया। सबसे पहले धानकावाला, फिर गांववाला, सरसावाला एक के बाद एक जोहड़ बनते चले गये। इन जोहड़ों

को बनने से जंगलात विभाग के अधिकारी, कर्मचारी बराबर रोड़े अटकाते रहे थे। क्योंकि ग्रामीण तो अब से पहले यहां केवल जंगलात कर्मचारी की दया पर रह रहे थे। वह अपनी मनमर्जी से पैसे लेकर पेड़ कटवाता था, शिकार करवाता था और गांव वाले अब तक यह मान चुके थे कि जंगल, जंगली जीव सब कुछ इस कर्मचारी के हैं। यह कर्मचारी इनका असली मालिक है।

कर्मचारी की मालिकाना भूमिका ने लोगों को जंगल व जंगली जीवों का दुश्मन बना दिया था। **तरुण भारत संघ** ने जंगलात कर्मचारी की भूमिका पर लोगों के साथ संवाद शुरू किया। और लोगों को बताया आप ही इस जंगल के मालिक हैं, आप इसे खत्म कर देंगे तो फिर भविष्य में क्या होगा। यह कर्मचारी तो केवल देखरेख करने वाला आपके लिए सहायक की तरह है, जो जंगल में रहकर जंगल की केवल निगरानी रखकर आपको बतायेगा। अपराधी को आप सजा देंगे। यह कर्मचारी सजा देने वाला नहीं है (कानून ने कर्मचारी को सजा देने वाला बना दिया था)। इसे हमने सरिस्का में व्यावहारिक रूप में बदलने की कोशिश की तो जंगलात विभाग के साथ संघर्ष हुआ। बाद में एक जंगल के लिए समर्पित अधिकारी सरिस्का में आया, उसे हमारा यह विचार समझ में आया। उसने अपने कानून की कमजोरी को समझ कर हमारा साथ दिया। अपने कर्मचारियों का प्रशिक्षण भी इसी तरह किया। और सरिस्का के जंगल बचाने की प्रक्रिया आरम्भ हुई। जल-जंगल संरक्षण कार्य तेज हो गया।

इस कार्य को तेज करने में एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम **रामायण पाठ** की भूमिका भी मुख्य रही। लोगों तथा कर्मचारियों की दूरी खत्म करने का सुझाव लोगों की तरफ से आया कि सभी गांवों में एक साथ रामायण पाठ किया जाये। इसमें कर्मचारियों को भी बुलाया जाये। पाठ में वे आयेंगे तो फिर उनसे बात की जाये। ऐसा ही किया गया। इस प्रक्रिया का परिणाम बहुत अच्छा रहा। अब दोनों मिलकर जंगल हित के साझे निर्णय लेने लगे। ग्राम सभा ने अपने आपको अनुशासित किया। इन्होंने अपने जंगल को बचाने हेतु अपने दस्तूर बनाये। उनकी पालना भी की। परिणामस्वरूप जंगल बचने लगे। नंगे हुए पहाड़ों पर हरियाली लौटने लगी।

गांव-गांव में जल-जंगल बचाने वालों की अच्छी सक्रिय टीम बननी शुरू हुई। इसका नेतृत्व जगदीश, बरदू, हरला, रामपाल, कालू, नानच्छा

मीणा, पांचू, रामप्रताप, राधाकिशन, रतना, रमेश, प्रभात गुर्जर तथा रमसी बलाई ने किया। पूरी छीण्ड जाग उठी। छीण्ड के लोगों को अपनी खोई ताकत का एहसास होने लगा। पुरानी बातें, सदमे, अच्छी बातें, अच्छे भूले रास्ते सब याद आने लगे। शायद भगाणी की खान में मरे लोगों के सदमे या बहती भगाणी को सुखाने वाली खनन की दु:खदायी याद इस क्षेत्र को पुन: सताने लगी हो और तिलवाड़ी का नया अनुभव (जोहड़ के पुन:सिंचन का पानी खान में पहुंचना) लोगों ने एक साथ जोड़कर देखा और फिर सरिस्का में चल रहे खनन को बन्द कराने की शक्ति (ऊर्जा) पुन: यहां के समाज ने समेट ली। और खनन के दुष्परिणामों की चारों तरफ चर्चा करने लगे। इन्होंने इस पर विधिवत् चर्चा हेतु एक जंगल संरक्षण यज्ञ भर्तृहरि में 1991 में मकर संक्रांति से बसन्त पंचमी तक चला। इसमें खनन बन्द करने का संकल्प लिया गया। अन्तिम आहुति के समय महिला-पुरुषों ने मिलकर खनन बन्द कराने की प्रतिज्ञा ली थी। उच्चतम न्यायालय में बात ले जायी गयी। वहां से खनन बन्द करने का आदेश प्राप्त होने पर भी त्रिगुट खनन चलाता रहा। अन्त में लोगों ने सत्याग्रह करके रास्ते रोक दिये। खनन बन्द हो गया। अब सरिस्का की जंगल भूमि पर खनन कार्य नहीं चल रहा है।

अब जंगली जीव पुन: अपनी अभय मुद्रा में घूमते दिखाई देने लगे हैं। नंगी पहाड़ियों पर जंगल, धरती मां का खाली पेट भरने हेतु जगह-जगह बने जोहड़, लोगों का पानी उपयोग के लिए स्वानुशासन तथा मर्यादित खेती से यहां की मृत प्रकृति पुन: जीवित हो गई है। नये जीवन का प्रत्यक्ष दर्शन जैसे मां के स्तन से दूध की धारा फूटने से होता है, ठीक वैसा ही इस क्षेत्र में भगाणी नदी की धारा के उदय के साथ हुआ है। अब भगाणी की धारा मां के स्तनों से अपने बच्चों के लिए बहने वाली धारा के समान है। इस क्षेत्र के जीव इसी प्रकार इसका पान कर रहे हैं। जब तक हमारा (जीवों का) रिश्ता मनुष्य मात्र से ऊपर उठकर सम्पूर्ण जीवजगत् के कल्याण की भावना से बना रहेगा, तब तक यह नदी बहेगी। जिस दिन हम केवल मनुष्य के स्वार्थ में फंस कर इस क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों का शोषण शुरू कर देंगे, यह नदी फिर सूख जायेगी।

मैं आशा करता हूं सरिस्का बाघ परियोजना अधिकारी/कर्मचारी/इस क्षेत्र के लोग पुरानी कहानी को सामने रखकर अपनी मर्यादाओं में रहकर इसका संरक्षण/संवर्द्धन करते रहेंगे। श्री वी.डी. शर्मा, राजेन्द्रसिंह भण्डारी,

फतेहसिंह राठौड़, बी.एम. शर्मा, एल.पी. शर्मा, तेजवीरसिंह चौधरी तथा सरिस्का के भूतपूर्व एवं वर्तमान सभी रेन्ज अधिकारियों, वनपाल तथा वनरक्षकों का आभार प्रकट करता हूँ। इन्होंने लोगों को समझने, उनके साथ संवाद को आगे बढ़ाने में मदद की है। हम इसी आपसी संवाद एवं समझ के कारण सरिस्का में खोई हुई हरियाली तथा खत्म होते जानवरों की वापसी का उत्साह संजोये हुए हैं।

भगाणी क्षेत्र के माण्डलवास, गढ़, मथुरावट, राजोर, कान्यास, कांसला, कालाखेत, मान्याला, पीलापानी, करांट, कांकवाड़ी, भगाणी, सभी गांववासी सम्मान के पात्र हैं, जिन्होंने अपने मृतप्राय परिवेश को पुनः जीवित कर लिया है। इन्होंने दूसरे लोगों तथा विभाग कर्मचारियों, संस्था कार्यकर्त्ताओं को जंगल व जंगली जीव बचाने का प्रेरणादायी काम किया है। मैं इनके प्रति सम्मान भाव प्रकट करके धन्य अनुभव कर रहा हूँ।

दवकन, सिटावट, तेजावाला, तिलवाड़, तिलवाड़ी, ककराली, रामपुरा, बेरवा डूंगरी, घाटड़ा, बेरली, बलदेवगढ़, पालपुर, कालवाड़, खोह, गोवर्धनपुरा, मल्लाणा, जयसिंहपुरा आदि गांववासियों ने जंगल-जंगली जीव बचाने हेतु खनन कार्य बन्द करने के लिए सत्याग्रह किया। इस सत्याग्रह का नेतृत्व स्वर्गीय श्री पांचूराम मीणा, महेश शर्मा, जन्सी, छोटेलाल, जगदीश, श्रवण, भोला मीणा, गोपी कुम्हार, गणेश गुर्जर आदि ने जगह-जगह किया था। इस कार्य में सहयोग रूपनारायण, वोदन वैद्य, जैसे सैकड़ों व्यक्तियों ने चुप रहकर किया था। इनके महान् कार्यों से ही भगाणी नदी वर्ष भर बहने लगी है। आज तिलदेह के तीर्थ में बहती गंगा का दर्शन खनन कार्य बन्द होने, जगह-जगह बांध-जोहड़ बनने, अच्छी वर्षा तथा जंगलों में हरियाली आने से ही संभव हुआ है। इसे संभव करने वाले सभी व्यक्तियों को मैं नमन करता हूँ। इन दोनों नदियों के फिर से बहने लगने की प्रक्रिया व प्रभाव को विस्तार से कहानी का रूप देने वाले **प्रो. मोहन श्रोत्रिय** तथा युवा कवि **अविनाश** को धन्यवाद देता हूँ।

राजेन्द्रसिंह
महामंत्री, तरुण भारत संघ

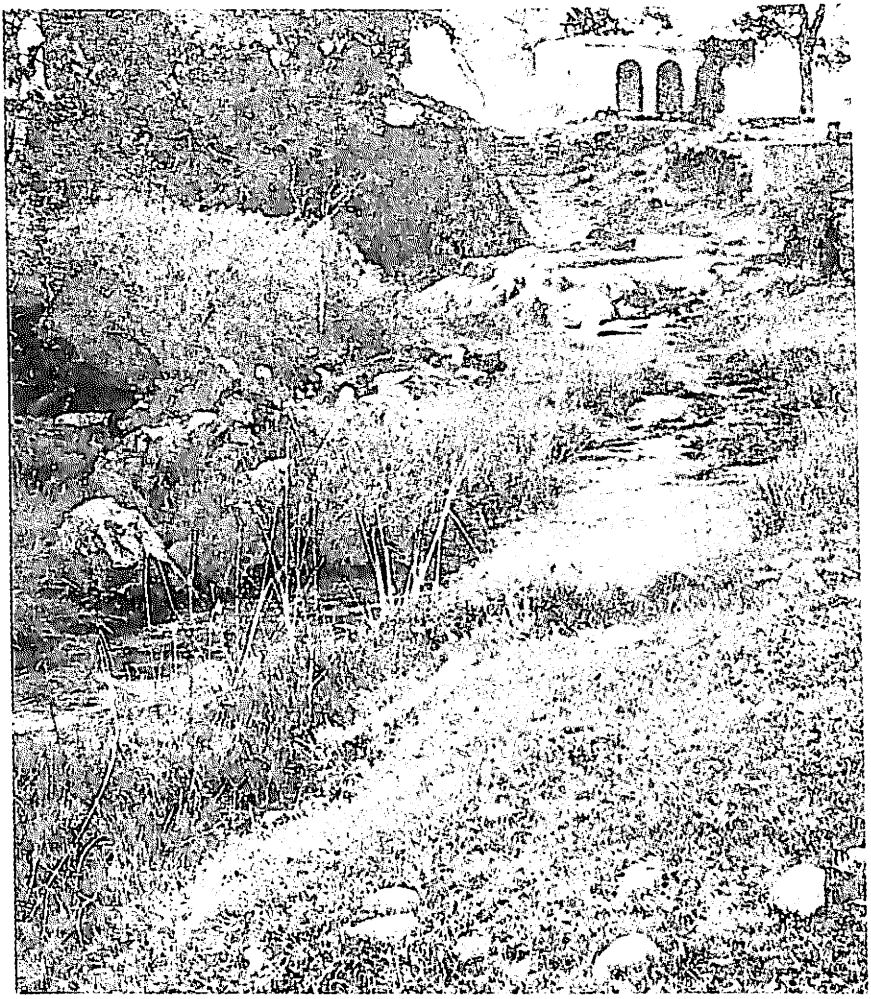

तिलदेह नदी पर बनते तीर्थ स्थल

भगाणी नदी

एक नदी है भगाणी। पत्थरों पर सरकती हुई। धाराप्रवाह। सरिस्का की खूबसूरत और हरी-भरी ऊंची पहाड़ियों के बीच। इसके जलागम क्षेत्र को एक तरह से देखें, तो उसका आकार त्रिभुज की तरह बनता है। भगाणी की जलधारा मानचित्र में देखने से वह नीचे से ऊपर की ओर जाती हुई लगती है। इसकी मुख्यधारा दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है। यह धारा गढ़ गांव के दक्षिण से शुरू होकर मांडलवास, राजौर, मथुरावट, कान्यावास होती हुई कांकवाड़ी के पास पहुंचती है और दूसरी जलधारा में जाकर मिलती है। फिर कांकवाड़ी से दक्षिण की तरफ बहने लगती है। मिसराला गांव के पास जाकर महाराजा जयसिंह के बनाये हुए बांध को भरती है। इस बांध को भरनेवाली यह जलधारा क्षेत्रफल की दृष्टि से लगभग 90 वर्ग किलोमीटर है। इस नदी की लंबाई 26 किलोमीटर है, जिसमें 16 किलोमीटर दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है और दस किलोमीटर उत्तर से दक्षिण की तरफ बहती है। इसकी मुख्य जलधारा अपना आधे से अधिक सफर दक्षिण से उत्तर की तरफ तय करती है और आधे से कम उत्तर से दक्षिण की तरफ चलती है।

भगाणी नदी का कांसला से ऊपर का चित्र

भगाणी नदी के साल भर बहते रह सकने के पीछे सबसे महत्वपूर्ण भूमिका सरिस्का जंगल के अंदर बसे गांव मांडलवास की है। यह गांव 1985

में सूखे और अकाल की भयानक चपेट में था। चौथी दुनिया के आलोक पुराणिक ने सरिस्का जंगल के अंदर बसे गांवों की तब की स्थिति पर एक अध्ययन किया था। उसमें लिखा था ''भुखमरी, बीमारी, पलायन यहां का आलम है। गायें प्यास से मर रही हैं, भैंस तो दिखती ही नहीं हैं। पुराने कुएं पालतू पशुओं व जंगली जानवरों की हड्डियों से भरे पड़े हैं, यहां की जनसंख्या घट रही है।'' इस गांव में एक ही थोड़ा-पढ़ा लिखा आदमी है उसका नाम जगदीश है। उमर पचास साल से ऊपर हो गयी है। पर उसे उसके असली नाम से कोई नहीं जानता। उसके गांव और आसपास के गांवों के लोग उसे पढ्या कहकर ही पुकारते हैं। ज्यादातर लोग उसका असली नाम जैसे भूल ही गये हैं। वैसे वह नवीं क्लास फेल है। अब तो इस गांव के बहुत सारे बच्चे पढ़ने लगे हैं, लेकिन आज से दस साल पहले ऐसा नहीं था। पढ्या होने का गौरव सिर्फ जगदीश को ही प्राप्त था, और किसी को नहीं। दरअसल, यह सिर्फ एक गांव का किस्सा नहीं था, समूचे सरिस्का क्षेत्र के गांवों की तस्वीर ऐसे तमाम किस्सों में नजर आती थी। मांडलवास गांव के ही साठ वर्षीय बरद्या ने 1989 में आलोक पुराणिक को बताया था कि उन्होंने हर बार कांग्रेस को वोट दिया था। हर एक बार नेता आता था। कहता था सड़क बनवा दूंगा, कुआं बनवा दूंगा, पर कुछ भी नहीं हुआ।

दौर बदहाली का

सरिस्का के अंदर के गांवों के तब के हालात पर चौथी दुनिया ने रिपोर्ट छापी थी। लू-धूप, गरमी, बदहाली, गरीबी और भ्रष्ट तथा संवेदनशून्य सरकारी मुलाजिमों की मार झेलने के अभ्यस्त हमारे देश के ज्यादातर गांव कभी खबरों के दायरे में नहीं आते। ये गांव तभी खबरों में आते हैं, जब यहां कोई कांड हो जाता है। कांड होने के बाद सरकारी अफसर-मंत्रियों के दौरे और मामला रफा-दफा करने की कोशिशें और फिर बेशर्मीभरी चुप्पी, यही राजनीतिक-प्रशासनिक प्रतिक्रिया होती है तमाम 'कांडों' पर।

पत्रकार आलोक पुराणिक ने 8 से 14 जनवरी 1988 की चौथी दुनिया के अंक में लिखा था कि सरिस्का के मुख्य कोर क्षेत्र के गांवों में अरसे से कई कांड झेल रहे करीब चार-पांच हजार लोगों को तो यह भी हासिल नहीं है क्योंकि उन्हें सरकार नाजायज आबादी मानती है। नाजायज आबादी को

दौर बदहाली का

बुनियादी मानवीय अधिकार कैसे मिल सकते हैं ? यह मासूम सवाल यहां के जंगलात विभाग के अफसर पूछते हैं। लिहाजा यहां की बसी आबादी के लोगों के साथ की गयी ज्यादतियां, बलात्कार, लूटपाट, किसी कानून के दायरे में नहीं आते, क्योंकि यह आबादी नाजायज है। यह तब की स्थिति थी, जब सरिस्का के इन गांवों में पानी का संगीत नहीं गूंजता था। जगदीश पढ्या बताते हैं कि अब स्थिति बिल्कुल बदल गयी है। यदि हम 1986 में पानी और जंगल बचाने का काम शुरू न कर देते, तो आज यहां होते ही नहीं। उन दिनों हालात इतने खराब थे कि कुओं में एक बूंद पानी तक नहीं था। जंगल में घास और पत्ते भी नहीं मिलते थे। बहुत सारे ढोर-डांगर तो भूख से मर गये थे। उनकी लाशों पर सारा दिन गिद्ध बैठे रहते थे और हर वक्त यह अंदेशा बना रहता था कि अब कुछ और होने वाला है। जगदीश पढ्या बताते हैं कि हम लोग भी अपने पेट की आग बुझाने के लिए इधर-उधर घूमते रहते थे।

धड़कन मांडलवास की

इसी मांडलवास का '92 तक कायापलट हो गया था। विकास विकल्प संस्थान, नयी दिल्ली की डॉ. प्रेमा गेरा ने मांडलवास की बदली हुई परिस्थिति पर एक अध्ययन किया था। उससे यह उभर कर सामने आता है

कि गांधी के रामराज्य के सपने को किसी ने कैसे भी समझा हो, पर अगर उसे कहीं सही ढंग से समझा गया है, तो वह है सरिस्का का मांडलवास। यहां इसे सही ढंग से और पूरी ईमानदारी के साथ साकार रूप देने का प्रयत्न किया गया है। मांडलवास के किनारे से होकर नन्ही-सी भगाणी बहती है। तब तक यह नदी तो नहीं बहती थी, लेकिन गांव के बदलने की खूबसूरत प्रक्रिया बखूबी शुरू हो गयी थी। इससे यह भी एकदम साफ हो जाता है कि धरती सजला कैसे बन सकती है।

मांडलवास गांव सरिस्का नेशनल पार्क के दक्षिण में, इसके केंद्रीय भाग और परिधीय क्षेत्र के बीच, सीमा पर स्थित है। यह गांव कालीघाटी से 20 कि.मी. पश्चिम में स्थित है। अलवर जिले की राजगढ़ तहसील में आता है। मांडलवास अरावली की ऊंची पहाड़ियों से घिरी एक घाटी में स्थित है। जलवायु शुष्क है। औसत वार्षिक वर्षा 51.2 सेमी. है, जिसमें अधिकतर 85 प्रतिशत मानसून आने पर होती है। जल-स्तर 15 मीटर से 27 मीटर की गहराई पर पाया जाता है। तापक्रम गर्मियों में 46 डिग्री सें. को पार कर जाता है और सर्दियों में चार डिग्री से. तक गिर जाता है। औसत नमी 76 प्रतिशत है। यहां गांव में बहनेवाली कोई भी नदी बारहमासी नहीं है (तब की स्थिति)। कुछ-एक मौसमी नाले सतही जल के साधन का काम करते हैं।

मिट्टी रेतीली दोमट है। गांव सूखे पर्णपाती जंगल के विस्तार परिवेश में स्थित है। वनस्पति की मुख्य जातियों में ढाक, सफेद सालर, खैर, छीला, कीकर, बेर, लोड़सीएली, हारसिंगार और बांस है। गांव का संपूर्ण क्षेत्र लगभग छह सौ पचास वर्ग हेक्टेयर है। गांवों में उगायी जानेवाली मुख्य फसलें खरीफ में ज्वार, बाजरा, मक्का, तिल और तम्बाकू तथा रबी में सरसों तथा गेहूं हैं।

लगभग दो सौ वर्ष पहले यह गांव बसना शुरू हुआ था। तीन परिवारों से शुरू होकर यह वर्तमान में 67 परिवारों तक पहुंच गया है। जनसंख्या रिकार्ड में यह राजौर गांव का हिस्सा दिखाया जाता था, लेकिन 1991 की जनगणना में अलग दर्शाया गया है। सभी परिवार मीणा जाति से संबंध रखते हैं। मुख्य व्यवसाय पशुपालन और खेती है। गांव में प्रत्येक व्यक्ति के पास जमीन है, जो कम या ज्यादा, समान रूप से वितरित है। प्रत्येक के

पास औसतन जमीन एक से 1.5 हेक्टेयर है। पशुधन में गाय 60, भैंस दो सौ पांच, बकरी 381 है। तरुण भारत संघ के 1991 के सर्वेक्षण के अनुसार गांव की आर्थिक स्थिति की विशेषता स्वयं भरण-पोषण की है। जितना ये लोग पैदा करते हैं, उतनी ही खपत हो जाती है।

गांव किसी भी बस सेवा से जुड़ा हुआ नहीं है। गांव में कोई बिजली की सप्लाई नहीं है सिवाय तरुण भारत संघ के आफिस में फोटोबोल्टिक लाइट के। गांव में कोई दूकान तक नहीं है। लोग पैदल ही 10-15 किलोमीटर दूर टहला या किशोरी में मूलभूत जरूरतों की वस्तुओं की खरीददारी के लिए जाते हैं। सबसे नजदीक कस्बा थानागाजी और राजगढ़ 50 कि.मी. की दूरी पर है तथा अलवर 70 किलोमीटर है। एक प्राथमिक विद्यालय और एक चिकित्सालय तरुण भारत संघ ने 1987 में यहां खोला था। राजोरगढ़ में एक मिडिल स्कूल है, जिसमें शिक्षक नहीं आते थे। अब तो फिर भी स्कूल की हालत थोड़ी सुधर गयी है।

यहां कुओं से कुल तीन प्रतिशत भूमि पर सिंचित खेती होती है। 27 प्रतिशत भूमि पर असिंचित खेती हो रही है। शेष वन भूमि है। मिट्टी के बांधों में जो कि क्षेत्रीय भाषा में जोहड़ कहे जाते हैं, वर्षा का पानी एकत्र होता है।

यों शुरू हुआ काम

जब **तरुण भारत संघ** मांडलवास में आया तब वहां गांव में केवल एक पुराना जोहड़ व एक छोटी-सी पक्की दीवार-सी बनी थी। इसी समय यहां पहला जोहड़ का काम शुरू हुआ। रख-रखाव की कमी के कारण इनका इस्तेमाल बंद हो चुका था। अधिकतर वर्षा का पानी बहकर नालों में ही चला जाता था। चार साल के सूखे ने भी स्थिति को बदतर करके गांव की अच्छी जमीनों पर गहरा प्रभाव छोड़ा था। दो या तीन कुओं को छोड़कर अधिकतर कुएं सूख चुके थे। भैंसें-गाएं प्यासी व भूखी मर गयी थीं। जमीन और पशुधन, दोनों की ही उत्पादकता प्रचंड रूप से घट चुकी थी। परिणामस्वरूप अधिकतर लोग दिल्ली और अहमदाबाद की तरफ मजदूरी करके पेट भरने तथा जीवन बचाने के लिए पलायन कर चुके थे। **तरुण भारत संघ** को यहां के लोगों ने गोपालपुरा में हुए काम को देखकर अपने गांव में आने का न्योता

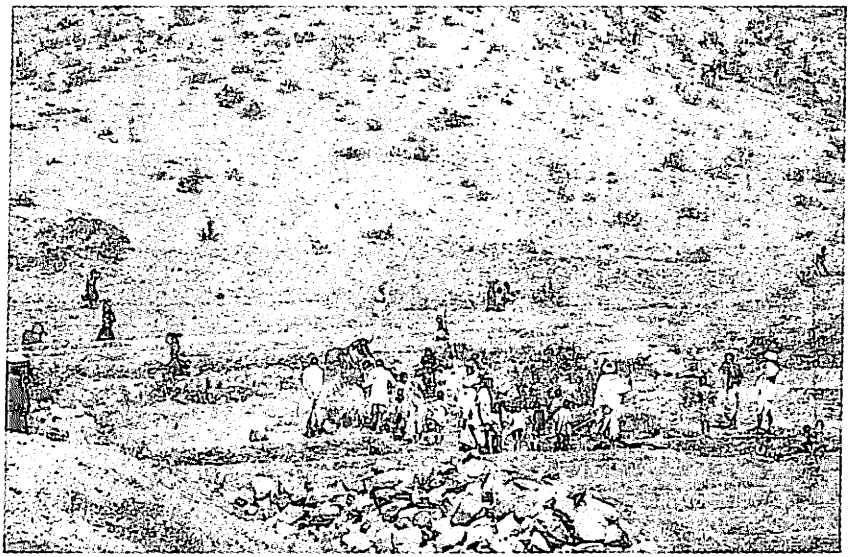

मांडलवास के लोग जोहड़ बनाते हुए

दिया था। संस्था ने इस गांव में 1987 में ही काम शुरू कर दिया। जैसा कि दूसरे गांवों में किया जा रहा था, यहां भी स्वास्थ्य और शिक्षण कार्यक्रम की शुरुआत की गयी। इस कार्य ने **तरुण भारत संघ** के लिए गांव में प्रवेशद्वार का काम किया। साथ ही इनकी दूसरी समस्याओं को समझने का मौका दिया। राजेन्द्रसिंह और संस्था के कुछ दूसरे कार्यकर्ता सप्ताह में दो बार गांव का भ्रमण करते रहे। जोहड़ों के लाभों के बारे में, जो कि उनकी समस्याओं का तात्कालिक निदान था, बात की। क्योंकि सबसे पहली समस्या लोगों और जानवरों दोनों के लिए पीने के पानी की थी। मांडलवास में दो कारणों से यह आसान काम नहीं था। पहला कारण यह था कि अधिकतर जन-समूह गांव से दूर श्रम करके पेट भरने व बच्चों को पालने के लिए पलायन कर चुका था और केवल खरीफ फसल बोने और काटने के लिए थोड़े समय के लिए ही लौटता था। इनको जोहड़ों के काम में लगाना, जो कि केवल फसल कटने के बाद में ही हो सकता था, संभव नहीं था। गांववासियों के आठ-आठ महीने गांव से बाहर रहने तथा गांव में कुछ दिन ही प्रवासियों की तरह रहने के बावजूद, इन प्रवासियों के साथ मिलकर ही तो लोगों द्वारा निर्णय लिये जाते थे। अत: काम संपूर्ण रूप में आगे नहीं बढ़ पा रहा था।

दूसरा कारण था गांव वालों में व्याप्त संदेह भावना (अविश्वास)। क्या वास्तव में काम हो सकता है ? तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता उन्हें सरकारी अफसरों की तरह तो नहीं लगे, लेकिन ये कार्यकर्त्ता गांव की भाषा भी तो नहीं बोलते थे। इन गांवों में पहले भी कभी कोई सरकारी काम नहीं हुआ था। जोहड़ आदि के लाभ का एहसास भी अब गांव वालों को नहीं रहा था। साथ ही तरुण भारत संघ पर अविश्वास भी था, जबकि इन्हें बुलाकर ये गांव वाले ही लाये थे। इनका कार्य भी देख लिया था, फिर भी लोगों का सुषुप्त अभिक्रम केवल संदेह करने तक ही सीमित रहा।

इस तरह की समस्याओं का सामना करते हुए और समस्या की जड़ को समझते हुए **तरुण भारत संघ** ने गांव के बुजुर्गों के पास पहुंचने का निर्णय लिया। इनमें से कई ने गांव में जोहड़ों की स्थिति को सामने रखा। वे कुछ जवान लोगों के साथ गोपालपुरा और अन्य गांवों में, जहां **तरुण भारत संघ** की मदद से जोहड़ों के पुनर्जीवन का कार्य हो चुका था, वहां गये। साथ ही शुरू में छोटे समूहों के साथ तथा एक-एक करके सभी परिवारों के साथ वार्तालाप किया गया। यह महत्वपूर्ण बात थी कि प्रत्येक परिवार संयुक्त प्रयास

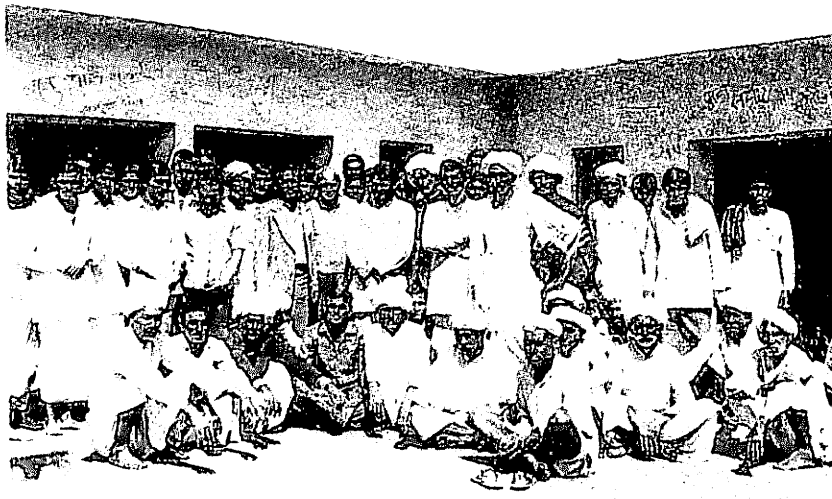

भगाणी-तिलदेह नदी क्षेत्र के लोग तथा तरुण भारत संघ के कार्यकर्त्ता मार्च 1986 में नारायणी माता के स्थान पर जल-जंगल संरक्षण की योजना बनाते हुए। इसमें विंध्यवासिनी-कुमार उत्तर प्रदेश से तथा वाई के शर्मा दिल्ली से आए थे

की जरूरत महसूस करता था। लेकिन वास्तव में ऐसे प्रयास कर पाना इस कारण कठिन था कि ऐसी सामलाती परंपरा वर्षों पहले खत्म हो चुकी थी और अब सभी परिवार अपने अस्तित्व के निजी प्रयत्नों में उलझ चुके थे।

क्या है हिस्सेदारी की प्रक्रिया

भगाणी नदी को लेकर जो सबसे महत्वपूर्ण बिंदु है बात करने के लिए, वह है सिंचाई तंत्र में हिस्सेदारी की प्रक्रिया। जैसा कि विकल्प विकास संस्थान, नयी दिल्ली द्वारा किये गये अध्ययन का रेखांकित विषय है, सिंचाई तंत्र में किसानों की हिस्सेदारी के ज्ञान को बढ़ाने के लिए संपूर्ण अनुभव का निम्न तीन हिस्सों में अध्ययन किया गया :

(अ) **तंत्र की रूपरेखा (रूपांकन) :** जोहड़ के वास्तविक निर्माण से पूर्व ग्रामसभा में लोगों के साथ जोहड़ के लिए उचित स्थान, मिट्टी की किस्म, एकत्र पानी के संभावित उपयोग, जलागम और प्राप्त होने वाले लाभों पर अध्ययन तथा विस्तारपूर्वक वार्तालाप किया जाता है। गांव के बुजुर्ग और तरुण भारत संघ के कार्यकर्ताओं ने इस विषय में महत्वपूर्ण योगदान किया।

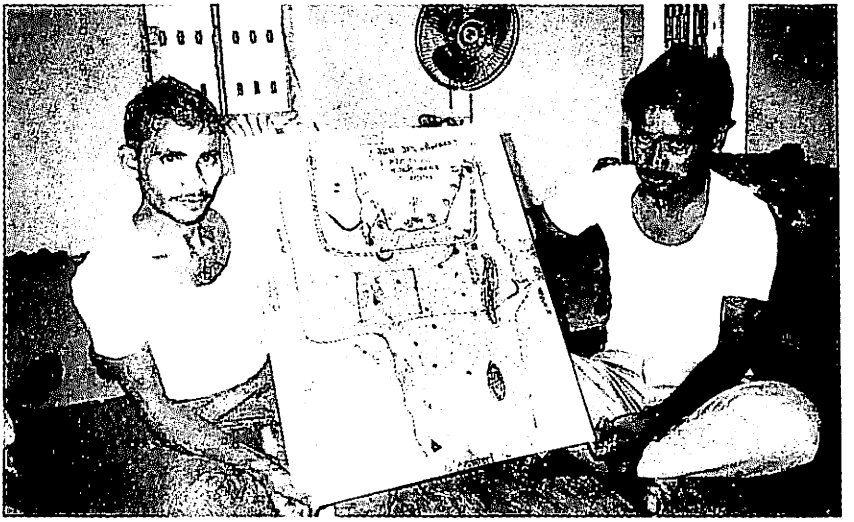

भगाणी के उद्गम-स्थल गढ़ गांव के संसाधन मानचित्र पर चर्चा करते हुए तरुण भारत संघ के कार्यकर्त्ता

(ब) **जलागम क्षेत्र का अध्ययन :** जोहड़ ऐसे स्थान पर बनाया जाता है जहाँ वर्षा का अधिकतम पानी बहता हुआ उसमें आ सके। यह निम्न बातों में आवश्यक रूप से दिखायी देता है। एक, वर्षा का घनत्व। यह वर्षा के औसतन हिस्सों को नियंत्रित करता है, जो कि बहकर जोहड़ में आता है। दो, जलागम के लिए स्थलाकृति। सामान्यत: एक वर्गाकार या गोलाकार जलागम क्षेत्र में प्राय: सहायक उपनदियाँ या नाले साथ-साथ आने और मुख्य धारा में केन्द्र के पास ही मिलने की प्रवृत्ति रखती है। उनके द्वारा परिणामस्वरूप बहुत अधिक और तेज बहाव मुख्य धारा में छोड़ दिया जाता है। जलागम क्षेत्र का ढाल तेज बहाव को प्रभावित करता है। सामान्यत: जोहड़ उन स्थानों पर बनाये जाते हैं, जहां मोरम मिट्टी पायी जाती है क्योंकि यह निर्माण के लिए अधिक उपयुक्त समझी जाती है।

(स) **जोहड़ के आकार-प्रकार :** जोहड़ का आकार (लंबाई, चौड़ाई, गहराई) वर्षा के बहकर आने वाले जल पर निर्भर करता है और आकर (रोक) पानी के बहाव तथा दबाव पर निर्भर करती है। गांव के सभी

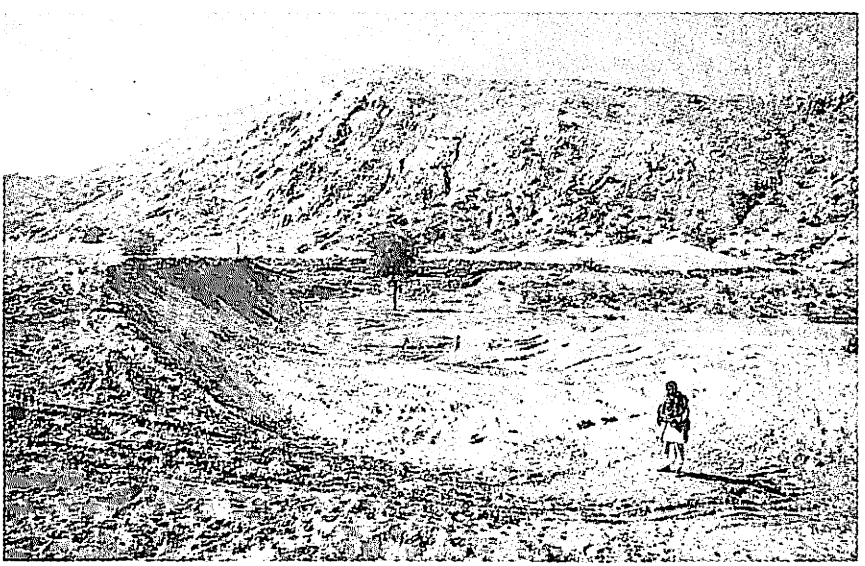

वीरान पहाड़ियों के बीच मांडलवास का बनता हुआ जोहड़

सिंचाई के लिए बनाई गई कालाखेत के बांध की मोरियां

जोहड़ अवतलाकृति हैं। जहां पर मुख्य धारा अधिक दबाव बनाती है, वहां पर चौड़ाई आधार पर बनायी जाती है। कुओं-जोहड़ों में जहां पर एक स्थान की अपेक्षा अधिक स्थानों पर जल दबाव अधिक बनता है, वहां या तो वह स्थान कुछ उत्तल आकृति के बनाये जाते हैं, या फिर एक राजगिरी संरचना(मोरियां) तैयार की जाती है जो लकड़ी के गुटके से बंद कर दी जाती हैं। यह कोहनी के आकार की संरचना होती है जिसमें पानी का दबाव बंट जाता है।

मांडलवास में दो जोहड़ इस श्रेणी से संबंध रखते हैं। जिसमें एक जोहड़ पूरा भरकर दूसरे में जाता है। कृषि योग्य भूमि इनके बीच में पड़ती है। शेष सभी एकल इकाई के रूप में हैं। गांववालों के द्वारा जोहड़ के लिए स्थान चुनाव के बाद इन परिवारों की पहचान की जाती है जो कि जोहड़ से प्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित होते हैं। वे स्वैच्छिक रूप से अपने श्रम और जमीन का हिस्सा अंशदान के अनुसार देते हैं। जबकि जोहड़ उनकी कृषि योग्य भूमि में बनाया जाता है। सभी परिवार आवश्यकता एवं उपलब्धता के आधार पर जोहड़ से पानी लेते हैं। पानी पुनःसिंचन क्रिया से कुओं में जाता है। कुओं से बैलों की शक्ति से लाव-चरस द्वारा पानी

भगाणी व तिलदेह नदी का जलागम क्षेत्र, तह. राजगढ़ (अलवर)

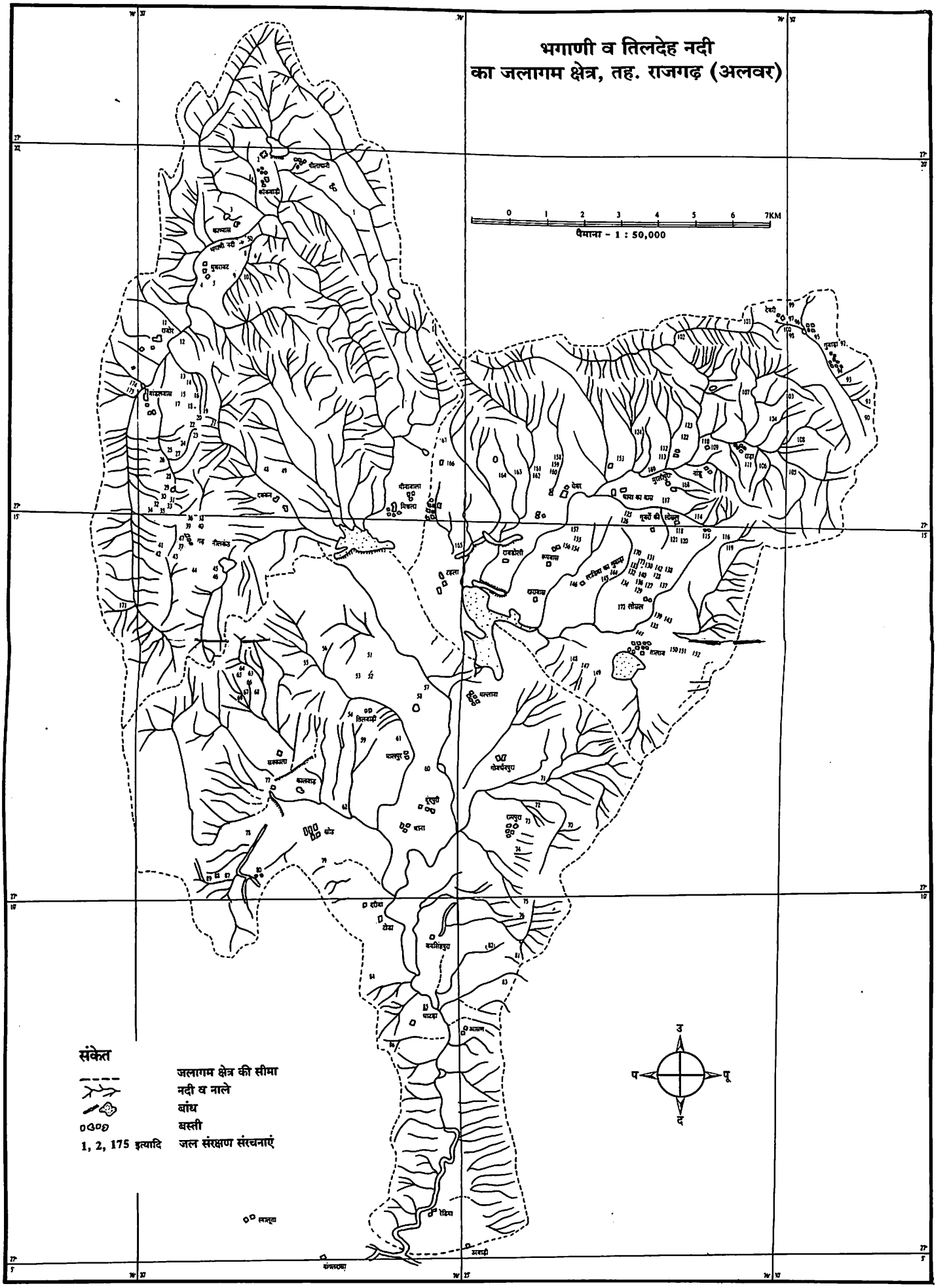

अकाल के दौरान मांडलवास की महिलाएं चारे के लिए भटकती हुईं

0.25 हेक्टेयर) 80 से सौ किलोग्राम मक्का पैदा होती थी, जो कि जोहड़ बनने के बाद चार सौ किलोग्राम तक बढ़ गयी। लांबावाला जोहड़ से लाभ उठाने वाले किसानों ने पाया कि अच्छी वर्षा न होने के बावजूद भी मक्का की पैदावार चारगुनी हो गयी है। कृषियोग्य भूमि का भी विस्तार हुआ है और चारे की समस्या का भी समाधान होने लगा है। गांव के दोनों जोहड़ों का पानी एकत्र करने वाला क्षेत्र भी रबी की फसल को पैदा करने के लिए काम में लिया जाता है। संपूर्ण गांव की कृषियोग्य क्षेत्र की मिट्टी नमी रोकने में सक्षम बन गयी है। साथ ही रबी की फसल भी पैदा की जा सकती है, कुओं के पानी की सहायता से उत्पादकता में वृद्धि तथा पानी उपलब्धता की सुधरी स्थिति ने पलायन पर तो जैसे रोक ही लगा दी है। अब केवल दो व्यक्ति गांव से बाहर काम करते हैं।

गांव में अठारह कुएं हैं जिनमें से अधिकतर सूखा पड़ने वाले वर्षों में सूख गये थे। जोहड़ों के बनने के बाद छह कुओं ने स्पष्ट बदलाव दिखाये और अब जल 16 से 17.5 मीटर तक उपलब्ध है जो कि पहले नहीं के बराबर ही होता था। गांववाला जोहड़ से मांडलवास के उत्तर के गांवों में 15 कुएं दोबारा सजल हो गये, जिनमें कालाखेत, राजोर, कांसला, कान्यावास और

मथुरावट के कुएं शामिल हैं। 1998 के शुरू में औसतन 22 मीटर पानी उपलब्ध है, जो किसी भी हाल में कम नहीं पड़ता।

गांववालों के संयुक्त प्रयास से जोहड़ों का सामुदायिक प्रबंधन और वृक्षारोपण, इन गांववालों का स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों पर उनके नियंत्रण का आभास ही देता है। यह अन्य गांवों के जंगलों पर भी लागू होता है। लोगों का समूह एक सामूहिक अस्तित्व के रूप में ढेर सारा आत्मविश्वास ग्रहण करके अपनी आवश्यकताओं का मूल्यांकन करके उनके समाधान के लिए काम कर सकता है।

गांववालों के मध्य विचारों का आदान-प्रदान विभिन्न सामाजिक विषयों पर जागरूकता को बढ़ाता है। यह सब मांडलवास में देखा जा सकता है, जहां विभिन्न सामाजिक समस्याओं, जैसे दहेज और बाल विवाह पर ग्रामसभा में विचार-विमर्श होता रहता है। जो भी बदलाव देखने में आये हैं, उन सबका श्रेय ग्रामसभा की सक्रियता को जाता है।

ग्रामसभा में नियमित चर्चा होती है। दूसरे गांवों के अनुभव भी सामने आते हैं। यह नियमित संवाद चेतना के स्तर को तो ऊंचा करता ही है, अपने बूते पर पहल करने को भी प्रोत्साहित करता है। ग्रामसभा की दो महिला सदस्य गांव की औरतों से इन सामाजिक विषयों तथा पोषण और शिक्षा आदि पर बात करती रहती हैं। गांव के बच्चे **तरुण भारत संघ** द्वारा चलाये जा रहे केंद्रों पर रोजाना कक्षा में उपस्थित होते हैं। अब धीरे-धीरे लड़कियों की संख्या इनमें बढ़ रही है। संतोष और प्रसन्नता की बात है कि अब तो **तरुण भारत संघ** के स्कूल में पढ़े बालक भी शिक्षक बनने लगे हैं। यहां से एक सरकारी शिक्षक बन गया है। पढ़ने के प्रति आकर्षण साफ बढ़ता नजर आता है यहां।

चेतना में आया बदलाव

आज मांडलवास में इस कदर बदलाव आ गया है कि यहां के लोग अब कोई भी बड़े से बड़ा काम आसानी से कर सकने के लिए तैयार रहते हैं। जंगल, जल, जमीन संरक्षण के काम ये अपनी स्वयं की इच्छा, समझ व

विश्वास के साथ कर रहे हैं। इन्हें आज किसी का डर नहीं है। इसलिए मांडलवास आसपास के गांवों के लिए जमीन, जल, जंगल आदि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण करने के लिए प्रेरणास्तंभ बन गया है। मांडलवास का ही एक नौजवान **रामपाल मीणा** आज कहता है कि **तरुण भारत संघ** ने सबसे पहले 1985 में भुखमरी, बीमारी तथा बच्चों का कुपोषण दूर करने का काम शुरू किया था। तब 50 फीसदी बच्चे रतौंधी से पीड़ित थे और शिशुओं की मृत्यु दर 75 फीसदी थी। मेरी खेती तो पानी की कमी के कारण पूरी तरह चौपट हो गयी थी। हमारे गांव के बच्चों के पास उस समय पहनने के लिए कपड़े तक नहीं थे। सारे दिन नंगे धूप में डोलते रहते थे। यह तो गनीमत थी कि **भूपेंद्रनाथ भाटिया** ने 1988 में हमारे गांव के सारे बच्चों के लिए दो-दो जोड़ी कपड़े तरुण भारत संघ के माध्यम से भिजवा दिये थे। वे कपड़े मैंने ही बच्चों में इनाम के तौर पर बांटे थे। उस समय इस बात का खास ध्यान रखा गया था कि ये कपड़े बच्चों को किसी भीख की तरह नहीं लगें। उन बच्चों को सम्मानस्वरूप वे कपड़े दिये गये थे। एक खेलकूद प्रतियोगिता आयोजित की गयी थी। इसमें सभी बच्चों को शामिल किया गया था। प्रतियोगिता में भाग लेने वाले सभी बच्चों को सम्मानस्वरूप कपड़े दिये गये थे।

पेड़ लगाते गांववासी

बिरदू मीणा कहते हैं कि **तरुण भारत संघ** ने हमारे दुख की जड़ ढूंढ निकाली थी। दुख के मूल कारण पानी की कमी को दूर करने की तरफ हमारा ध्यान दिलाया। सबसे पहले हमने गांव के पास एक जोहड़ बनाया। फिर उसके बाद धानकावाला जोहड़ का निर्माण किया। इन दोनों जोहड़ों के बाद ही हमारे गांव की तकदीर बदलनी शुरू हुई। भगाणी की दोनों मुख्यधाराओं, गढ़ की तरफ से आनेवाली धारा और गोपालपुरा के पहाड़ से आनेवाली धारा का पानी गांव में ही रुकना शुरू हो गया। इसके रुकने से हमारे कुओं का जलस्तर भी बढ़ना शुरू हो गया। हमने खेती का काम भी चालू कर दिया। हमारे बुरे दिन फिरने लगे। अच्छे दिन आने लगे। फिर उसके बाद तो एक के बाद एक बांध बनने शुरू हो गये। आज हमारे गांव की सीमा में छोटे-बड़े करीब 15 बांध बन चुके हैं। अब तो खेतों की मेड़बंदी भी हमने शुरू कर दी है। जोहड़/बांध की देखभाल का तरीका तो हमें विरासत में मिला है। जोहड़ की पाल पर भोमिया बाबा का स्थान है। जब हम उत्सव करते हैं तो पाल की मरम्मत की चर्चा भी कर लेते हैं। जोहड़ की पाल पर देवता का स्थान दरअसल जोहड़ के काम का अभिन्न हिस्सा बन गया है।

जगदीश पढ्या कहते हैं कि सबसे बड़ी बात तो यह है कि हमें **तरुण भारत संघ** ने जंगलों के महत्व को समझाया। पहले हम जंगल काटते थे और सरकार हमसे खानगी (रिश्वत) चूंठती (वसूलती) थी। आज हम यह मानते हैं कि यह जंगल हमारा है। इसलिए हमारे गांव से खानगी जाना और जंगल का कटना बिल्कुल ही बंद हो गया है। गांव के चारों ओर हरा-भरा जंगल नजर आता है। जो महिलाएं पहले दिन-रात लगकर भी ईंधन-चारे का इंतजाम नहीं कर पाती थीं, अब कुछ घंटों में ही यह सारा काम निबटा लेती हैं।

इस काम से महिलाओं को बड़ा सुख हो गया है। **लछमा देवी** कहती है : पानी के काम से महिलाओं की किस्मत ही बदल गयी। अब हमारा काम बहुत आसान हो गया है। पहले हम पानी-ईंधन के काम में ही खटती-खपती रहती थीं। अब हमारा बहुत सारा समय बचने लगा है। मैं तो आजकल भैंस चराने चली जाती हूं। दिन भर आराम से रहती हूं। शाम को भैंसें भरपेट घर लौटती हैं और खूब दूध देती हैं। दूध-घी का

पैसा हमारे हाथ में ही रहता है। खेतों की पैदावार भी बढ़ गयी है। एक जमाना था जब घर चलाना बड़ा मुश्किल काम था। छोरों की शादी भी नहीं होती थी। अब वैसी हालत नहीं रही है। खूब रिश्ते आते हैं।

इसी गांव के दूसरे बुजुर्ग **पांचू** का कहना है कि पहले तो घर में खाने तक के लाले थे। हम अनाज मोल लाते थे। अब तो हम इस हालत में आ गये हैं कि खुद अपना अनाज बेचते हैं। मथुरावट गांव के **रमसी बलाई** कहते हैं कि 15 साल पहले तो यहां कुएं सब सूख गये थे। हम खेती करना ही भूल गये थे। बस कुछ भेड़-बकरी बची थीं, उन्हीं के सहारे जीवन चलता था। गांव में कोई धर्म-धीरा नहीं बचा था। अब तो हमने पक्के मकान बना लिये हैं। दूध और अनाज की तो खूब मौज हो गयी है। सुबह गाय-भैंसों को चराई के लिए खोल देते हैं। शाम में अपना पेट भरके वे अपने आप ही वापस लौट आती हैं। अब हमारी और हमारे पशुओं के खाने-पीने की कोई चिंता नहीं रही। कालाखेत गांव के **रामप्रताप गुर्जर** कहते हैं कि हम चारों भाइयों ने अब

चारों भाइयों ने बांधा कालाखेत का बांध (भगाणी नदी का जलागम क्षेत्र)

से दस साल पहले अपने खेत के पास के नाले पर एक बांध बनाया था। जब पहला पानी भरा, उस दिन से आज तक हमारे कुएं का पानी कभी कम नहीं पड़ा है। उसी पानी की बदौलत आज इस जंगल में हमने दो-दो पक्के मकान

बना लिये हैं। भगाणी की मुख्यधारा के किनारे बसे कांसला गांव का **भोंरा मीणा** कहता है कि दस साल पहले भूखे-प्यासे रहकर **तरुण भारत संघ** की मदद से एक एनीकट हमने बनाया था। इस एनीकट की बदौलत आज हमारे यहां सब तरह की मौज हो गयी है। 12 साल पहले जंगलात विभाग ने मेरे ऊपर झूठा इल्जाम लगाकर मुझे फंसा दिया था। ये जंगलात के लोग उस जमाने में हमारी इज्जत, आबरू, पैसा सब कुछ लूटते रहे हैं। हमें तो इन जंगलात वालों ने बस बर्बाद ही कर दिया था। **तरुण भारत संघ** के इस क्षेत्र में आने के बाद ही हमारी यह बर्बादी रुक सकी। अब तो हमारी खूब ही मौज हो गयी है। हम सुखी और संपन्न हो गये हैं। भोंरा के परिवार ने मेहनत करके **तरुण भारत संघ** की मदद से एक बड़ा बांध बना लिया है। इसका भगाणी नदी को पूरे साल बहाने में बड़ा योगदान है।

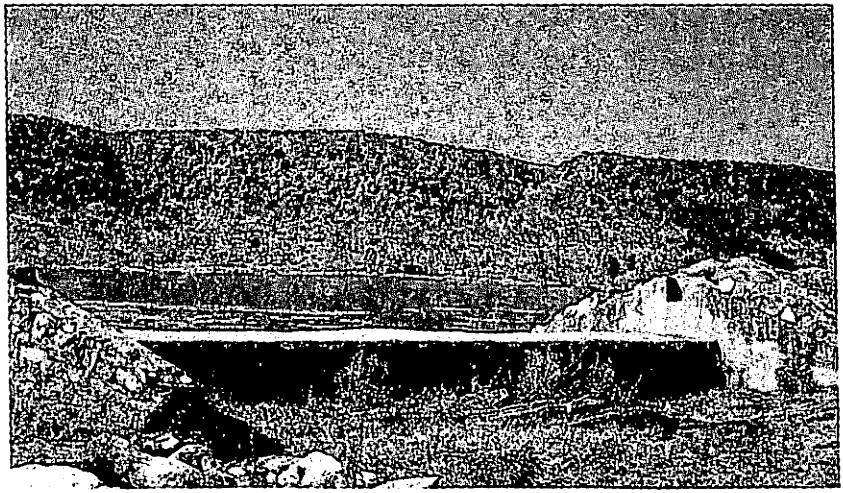

भोंरा कांसला का बांध

कान्यास गांव का **पांचू गुर्जर** बताता है कि 10-15 साल पहले तक **तरुण भारत संघ** पर हमारा भरोसा जमा ही नहीं था। उस समय मैं राजौरगढ़ पंचायत का सरपंच था। तब इस संस्था का विरोध करने वालों में मैं भी शामिल था। पर अब वे दिन याद आते हैं, तो मन में बहुत पश्चात्ताप होता है। **उस वक्त ये लोग उखड़ गये होते, तो हमारे इलाके के साथ बहुत ही बुरा होता।** इन लोगों की मदद से गांव में स्कूल के पास एक बड़ा जोहड़ बन

गया है। इस जोहड़ में पूरे साल भर पानी रहता है। इसके पानी से ही गांव का सारा काम होता है। पशुओं के पीने के लिए भी अब पानी की कोई कमी नहीं रही। गांव के सभी कुओं में पूरे साल ऊपर तक पानी रहने लगा है।

कांकवाड़ी के **रामकिशन गुर्जर** का कहना है कि तरुण भारत संघ के काम से तो हमें नयी जिंदगी मिली है। यह वही कांकवाड़ी है, जहां आदमी और जानवर में फर्क नहीं था। इसी कांकवाड़ी में एक किला है, जिसके बारे में यह कहा जाता है कि मुगल बादशाह औरंगजेब ने राजनीतिक सत्ता संघर्ष में परास्त कर अपने भाई दाराशिकोह को यहां पर कैद रखा था। इंसानी जिंदगी को रास न आने वाला यहां का किला और पीलापानी के माहौल से लड़-झेल कर दाराशिकोह यहां तीन साल के भीतर ही मर गया था। पत्रकार आलोक पुराणिक ने चौथी दुनिया के 7 से 13 फरवरी 88 के अंक में इस ऐतिहासिक तथ्य वाले किले को राजनीति के हाशिये पर पटक दिये गये सरिस्का के लोगों की नियति का एकदम सटीक प्रतीक माना था। लिखा था कि कांकवाड़ी किले के ठीक नीचे पहाड़ पर फोड़े-फुंसी की तरह उग आयी झोंपड़ियों और उनमें रहनेवाले इंसानों में 'मौत' की जिंदा शक्ल अपनी समूची भयावहता और नंगेपन के साथ उजागर हो रही थी। लगभग पचास घरों के करीब पांच सौ लोगों की इस आबादी को 'गांव' कहना तो एकदम बेमानी लग रहा था।

तब यहां खेती की इजाजत नहीं थी। पशुपालन तक पर पूरी तरह प्रतिबंध था। सरकार की तरफ से तो यह सब अब भी है, लेकिन गांववालों के संगठन के कारण इन सामंती कानूनों की धज्जियां मजेदार ढंग से उड़ रही हैं। सरकार ने तब इस गांव को बर्बादी के कगार तक पहुंचा देने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। अगर एक हैंडपम्प का लगना इंतजाम माना जाये, तो इंसानों के लिए अलग से पानी का इंतजाम भी अभी दिसंबर '87 में ही हो पाया था। इससे पहले यहां जानवर और इंसान एक ही जोहड़ का पानी केवल वर्षा में ही पीते रहे थे। यह हैंडपम्प भी यहां की आबादी की बुनियादी जरूरतों का खयाल करके नहीं लगाया गया था। तत्कालीन प्रधान मंत्री राजीव गांधी के संभावित दौरे को ध्यान में रखकर लगाया गया था। बात दरअसल यह थी कि राजीव गांधी को कांकवाड़ी का किला खासतौर पर पसंद था। प्रधान मंत्री

बनने से पूर्व भी वह यहां आते रहे थे। आलोक पुराणिक ने चौथी दुनिया में इस घटना का जिक्र करते हुए लिखा था, राजीव जी अपनी रियाया के सुख-दुख का खयाल करके कुछ ऐसा-वैसा न पूछ बैठें, इसी के इंतजाम के तहत यहां एक हैंडपम्प गड़वा दिया गया था। अब यह बात दीगर है कि रियाया राजीव गांधी से कुछ सवाल न कर बैठे, उसका इंतजाम भी यहां के हाकिमों ने कर डाला था। राजीव गांधी के सरिस्का दौरे से दो दिन पहले इस गांव के लोगों को खदेड़कर गांव खाली करा लिया गया था।

कांकवाड़ी की 32 वर्षीय **सूसी बाई** चौथी दुनिया के अध्ययन के वक्त 22 साल की थी। तब अपने दो बच्चों के साथ जिंदगी की लड़ाई लड़ते बहुत बदहाल और पस्त हो चली थी। वैसे कांकवाड़ी में तब 'जिंदगी' का मतलब एकाध वक्त के खाने की जुगाड़ करने भर से ही था। सन् '84-85 में सूसी का घरवाला **कल्याण गुर्जर** खजूर के पेड़ से पत्ते तोड़ के ले आया था। जंगलात वालों ने उसका चालान कर दिया और जेल में डलवा दिया। उसकी बेहिसाब पिटाई की गयी। बेचारा कल्याण इतनी ज्यादतियां झेल नहीं पाया। हिरासत में ही चल बसा। कल्याण की लाश भी सूसी को मौत के पांच दिन बाद ही नसीब हो पायी।

पीलापानी गांव के **रमेश गुर्जर** बताते हैं कि **तरुण भारत संघ** की मदद से अपने व पशुओं के पीने के पानी का प्रबंध किया है। हमारे गांव में पहले कोई जलस्रोत नहीं था। अपने पीने तक के लिए मीलों दूर जाकर पानी लाना पड़ता था। पशुओं को भी कई मील दूर जाकर पानी पीना पड़ता था। रमेश बताते हैं कि अब तो गांव के पास ही पानी का इंतजाम हो गया है। हमारे गांव में **तरुण भारत संघ** की मदद से बने जोहड़ में वर्ष भर पानी रहता है। इस जोहड़ को पूरे गांव ने मिलकर बनाया था। इसके लिए चौथाई श्रमदान हर परिवार ने मिलकर जुटाया था। अब इस काम से हम बहुत ही स्वाभिमानी व आत्मविश्वासी हो गये हैं। क्योंकि पहले रोज पानी के लिए लड़ाई होती थी। जहां भी अपने पशुओं को लेकर हम जाते थे, वहीं के लोग हमें भगा देते थे। अब तो दूसरे गांव के पशु भी गरमी के दिनों में हमारे यहां आकर पानी पी जाते हैं। जंगलात वालों का डर भी अब समाप्त हो गया है। अब हमारे गांव के लोग ही संगठित होकर जंगल बचाने के काम में जुट गये हैं। हमें न तो अब

पानी का दुख रह गया है, न ही खाने का। दस साल पहले तो जंगलात के लोग हमें घी भी बाहर बेचने नहीं जाने देते थे। टहला दरबज्जे पर ही रखवा लेते थे। अब तो हम शान से अपने जंगल में घूमते-टहलते हैं। अपने जंगल को बचाते हैं। हमारे जंगल में अगर कोई शिकारी टाइप का गलत आदमी दिख जाता है, तो पहले उसे स्वयं पकड़ने की कोशिश करते हैं। हमारी पकड़ में नहीं आता है, तो जंगलात विभाग को इस संबंध में सूचना देते हैं। अब तो पूरे साल पानी की मौज रहती है। ऐसा लगता है जैसे गांव के पास से ही गंगा बहने लगी है।

और तिलदेह ...

यह भगाणी मिश्राला गांव के पास से होती हुई दवकन बांध में जा मिलती है। अब इस बांध में भी वर्षभर पानी रहने लगा है। अन्यथा पहले तो फाल्गुन के बाद हमारे पशु इससे भी प्यासे घर लौट आते थे। उन्हें कुएं से खींचकर पानी पिलाना पड़ता था। महिलाओं का रात-दिन पानी/ईंधन के जुगाड़ में गुजरता था। अब तो दिन ऐसा बदला कि यहां **कुंवर गुमान** कहती है, अब तो हमें समय है, हम दस नये काम कर लेती हैं। पहले तो हमारे पुरुषों को केवल खदानों में पत्थरों की तोड़-फोड़, ऊपर से सेठ, ठेकेदार की मार, गालियां सुनना ही हमारी नियति बन गई थी। अब वे भी खेती में ध्यान देने लगे हैं। पशुपालन-दूध आदि से हमारा अच्छा गुजारा होने लगा है।

इस बांध से नीचे जाने पर इस नदी का नाम बदलकर तिलदेह हो जाता है। इसके किनारे पर बसे गांव सिटावट, तेजावाला, रामपुरा, तिलवाड़, पालपुर, मलाना, गोवर्धनपुरा, रामपुरा आदि सभी खनन के ब्लास्ट से पत्थर की मार, ट्रकों की धांय-धांय, क्रेन से होने वाली दुर्घटना में मृत्यु तथा जहरीला धुआं खा रहे थे। इन्हें **तरुण भारत संघ** के साथ ने इन सब मुद्दों पर विचार करने का अवसर दिया। धीरे-धीरे संगठित किया। लोगों में चेतना का संचार हुआ, ऊर्जा आयी तथा लोग इस खनन के विरुद्ध दबी जुबान में बात करने लगे।

जगह-जगह शिविर आयोजित किये गये। बात हुई। इससे कुछ नयी ऊर्जा का संचार हुआ। फिर लोगों ने इस विषय में लम्बी चर्चा करने हेतु कुछ ठोस निर्णय करने के लिए भर्तृहरि में जंगल संरक्षण यज्ञ किया। इस यज्ञ में इन्होंने **तरुण भारत संघ** से कहा कि वह खदानें बन्द कराने हेतु लिखने/पढ़ने/अदालत के काम में मदद करे। **तरुण भारत संघ** ने इनकी बात को गंभीरता से लिया और इसे अपना सबसे महत्त्वपूर्ण काम मानकर जुट गया। देश की सबसे बड़ी अदालत में खनन के विरुद्ध मुकदमा शुरू हुआ। अदालत ने **तरुण भारत संघ** के पक्ष में अपना फैसला सुनाया। खानें बन्द नहीं हुईं। खान मालिकों ने **तरुण भारत संघ** को उखाड़ फैंकने की ठान ली। कार्यकर्ताओं पर हमले किये गये। **राजेन्द्रसिंह** की हत्या के प्रयास किये गये। अदालत ने हत्या के प्रयास करने वालों को सजा दी। खान मालिक कुछ मायूस हुए। लोगों का उत्साह बढ़ा, लोगों ने सत्याग्रह शुरू किया। रास्तों पर बैठ गये जम कर। पत्थरों के ट्रक जाने नहीं दिये। स्थानीय मजदूर काम पर नहीं गये। अन्त में खदानें बंद हो गईं। खानों से जो प्रदूषित जल निकाल कर फैंका जा रहा था, वह बन्द हो गया। जैसे ही जल की निकासी कम हुई धरती का पेट भरने लगा। धरती का पेट भरते ही वह अपने पुराने सहज स्वरूप में बहने लगी। आज तिलदेह में पानी का प्रवाह देखकर भागीरथी का स्मरण हो आता है। ठीक वैसी ही, स्वच्छ, निर्मल, पुण्यदायी दिखती है। इसका पुण्य तब और बढ़ जाता है जब यह ध्यान में आता है कि इसका जल नीलकण्ठेश्वर से (दक्षिण से उत्तर वाहिनी) कालाखेत तक 16 कि.मी. बहता है, फिर 5 कि.मी. पूर्व दिशा में बहती है। उसके बाद दक्षिण दिशा में इसका प्रवाह होता है। **तिलदेह** का यह पुन: बहने लग जाना **तरुण भारत संघ** का ही भागीरथ-प्रयास है। इसने लोगों को संगठित किया, सृजनात्मक कार्यों में लगाया। तभी अब जगह-जगह झरनों व नदी का बहना शुरू हो गया है।

रामपुरा में **रूपनारायण** ने जो पहले खान मालिक था, खदान बन्द होने पर, **तरुण भारत संघ** की प्रेरणा से तथा सहयोग से जंगल में एक बांध बनाया। लोगों के साथ मिलकर जंगल बचाने का काम किया। अब इस बांध के नीचे वर्ष भर झरना बहने लगा है। इसी प्रकार घाटडा गांव के महन्तजी **जयराम** जो पहले खनन समर्थक थे, बाद में वह भी जल-जंगल संरक्षण के काम में लग गये। घाटडा गांव, जो पहले कभी जल का बड़ा खजाना था,

बीच के दौर में जल की कमी वाला क्षेत्र बन गया। इसीलिए यहां के लोगों ने भी बांध-जोहड़ बनाने का काम पुनः शुरू किया। खदानें बन्द होने पर लोगों ने जल की व्यवस्था करके खेती करने में अपना ध्यान केन्द्रित किया।

मजूर से मालिक बनते लोग

खदान बन्द होते ही पालपुर के लोगों ने अपनी बंजर पड़ी जमीन की सार-संवार शुरू कर दी। पालपुर की महिला सरपंच ने भी **तरुण भारत संघ** की मदद से खेत में छोटा बांध बनाया।

जगदीश मीणा, दुकानदार, पालपुर ने तो खदानों के बीचों-बीच बेकार हो गई भूमि पर बांध बनाकर खेती शुरू कर दी। पहले जब खदानें चलती थीं तब तो वह खान मालिकों का बड़ा समर्थक था। लेकिन खदान बन्द होते ही **तरुण भारत संघ** की मदद से अपनी खेती की जमीन सुधारने के काम में लग गया। अब इसके पास खेत की अच्छी जमीन हो गई है। खेत व दुकान से खूब कमाता है।

जयसिंहपुरा में **अर्जुन** व **श्रवण मीणा** ने भी इसी प्रकार खनन से बेरोजगार हुए बनजारों को रोजगार देने तथा अपना खेत ठीक करने के लिए

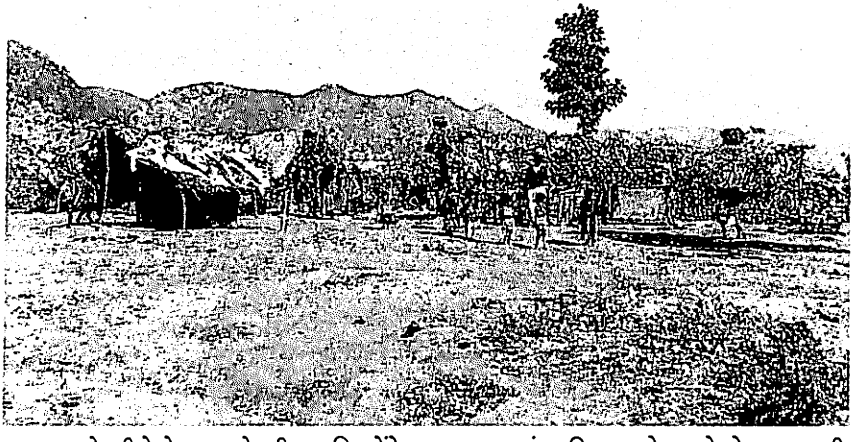

पारासर के नीचे के बनजारे परिवार जिन्होंने तरुण भारत संघ की मदद से अपने क्षेत्र का पानी रोककर खेती का काम शुरू किया

बांध बनाये। पहले ये दोनों खदान में मजदूर थे। अब तो इनके खेत पर ही लोग काम करने आते हैं।

पारासर के पास बनजारे जो पहले खदानों में काम करते थे, उनकी महिलाओं का अधिकतर समय पानी की व्यवस्था में ही निकल जाता था। अब अपने खेत का पानी खेत में रोक कर मालामाल हो रहे हैं। खेत में अच्छी पैदावार होती है। यह प्रक्रिया मजदूर से मालिक बनाने वाली साबित हुई है। इस क्षेत्र में

पारासर गांव की बनजारा बालिकाएं पानी के लिए मीलों दूर जाती हुई

बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है, जो खेती छोड़कर खदानों में मजदूर हो गये थे। लेकिन अब वे पुनः खेती करने लग गये हैं, इसलिए उनमें मालिकाना भाव धीरे-धीरे आ रहा है। दिन बदल रहे हैं। वीरान नंगे पहाड़, नंगे लोग, अब शृंगार करने लगे हैं। धरती के शृंगार से लोगों का शृंगार शुरू हो गया है। लोग अपनी इज्जत, स्वाभिमान, सम्मान के साथ जीने लगे हैं, भगाणी-तिलदेह में आया पानी लोगों के अन्दर सम्मान से लौटा पानी ही है।

रूपनारायण कहते हैं : तिलदेह के गोमुख से आज फिर से जो पानी बहने लगा है, वह हमारे सामूहिक पुण्यों का ही फल है। हमने इस नदी के जलागम क्षेत्र में कड़ी मेहनत और सूझबूझ से जगह-जगह छोटे-छोटे बांध/जोहड़ बनाये और जंगल बचाने का काम किया। इस सबका मिलाजुला असर

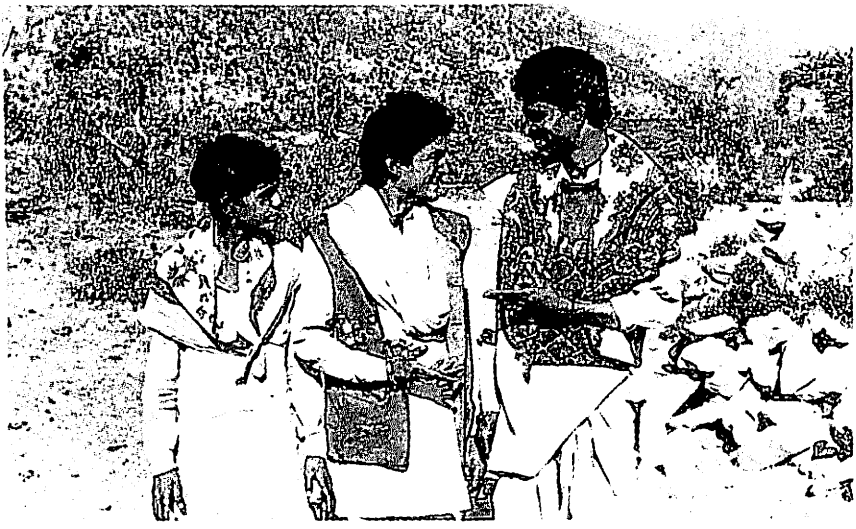

पहली फसल होने पर प्रसन्न मुद्रा में युवा बनजारे

यह हुआ कि धरती माता का पेट पानी से भर गया तो जगह-जगह न जाने कब से रुके पड़े झरने फिर से बहने लग गये। हमारे तिलदेह-गोमुख का झरना भी बह निकला।

जन्सी मीणा तथा अन्य पालपुर निवासियों से बात करें तो वे अपनी खुशी को छिपा नहीं पाते। कहते हैं : हमारी जिंदगी में सुख-शांति एवं सुरक्षा का भाव फिर से आ गया है। कुओं में अब पानी ही पानी है। हमारा यह संकल्प है कि अपने इलाके में हम भविष्य में खानें-खदानें नहीं चलने देंगे। अब हमें समझ आ गयी है। खानें-खदानें हमारे लिए मीठा जहर हैं। जब ये आती हैं तो अपने साथ ढेर सारे पैसे और नौकरी के आकर्षणों से स्थानीय लोगों को लुभाती हैं। पर कुछ दिन में ही रंगीन सपनों का मायाजाल टूटने लगता है। ये हमें देती कुछ नहीं बल्कि उल्टे हमें ही लूट लेती है। हमारे जल, जंगल, जमीन को बर्बाद कर देती है। भला हो **तरुण भारत संघ** का कि इसने हमें मुक्ति दिला दी। खानों-खदानों से मुक्ति पाते ही हमने सबसे पहले अपने गोचर में एक जोहड़ बनाकर अपने नये जीवन का श्रीगणेश किया।

पालपुर निवासी **श्रवण मीणा** कहते हैं : घर के पीछे की खदानों में रात-दिन होने वाली धांय-धांय से अब हमें मुक्ति मिल गयी है। खदानों का

मलबा बरसात के पानी के साथ बहकर हमारे खेतों में आ जाता था और जम जाता था। इससे हमारी खेती की जमीन तो बर्बाद ही हो गयी थी। अब खदानें बंद हो जाने के बाद हम नंगी हो गयी पहाड़ियों पर फिर से हरियाली लाने की कोशिश में जी-जान से जुटे हैं। बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण कर रहे हैं। यहां की घास आगे चलकर हमारे पशुओं को ही मिलेगी। गांव को समृद्ध बनाने में योगदान करेगी।

मल्लाणा गांव की सभी खदानें बंद कराने की अपनी कीर्तिकथा सुनाते हुए **बोदन वैद** कहते हैं : खदानों ने हमारे गांव को नरक बना दिया था।

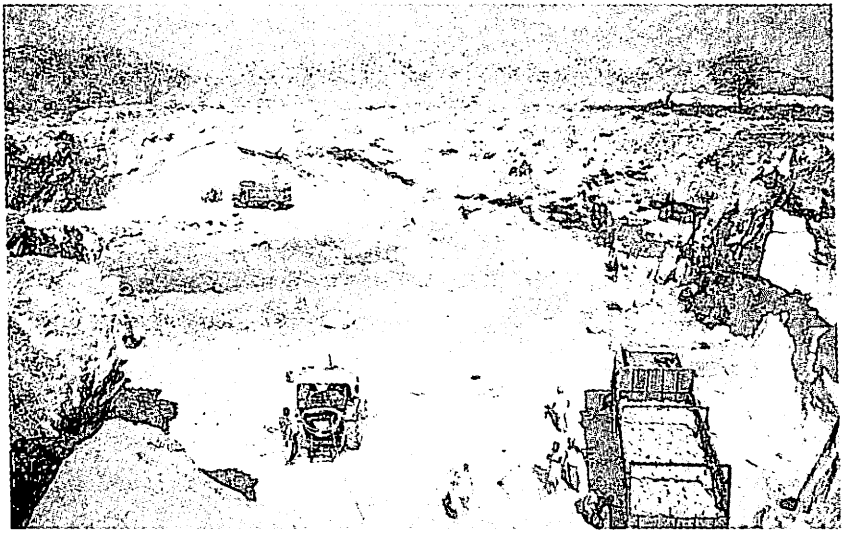

मल्लाणा में खनन से बिगड़ा परिवेश

अब धीरे-धीरे पानी और फिर से हरियाली आ जाने से जीवन बदलने लगा है। जल्दी ही नरक स्वर्ग बन जायेगा।

इसी गांव के श्री **बद्रीप्रसाद मीणा**, आई.ए.एस., कहते हैं, पिताजी ने जब **तरुण भारत संघ** के साथ खदानें बंद कराने का आंदोलन चलाया था तो विश्वास नहीं होता था कि इतना बड़ा काम हमारा छोटा-सा गांव कर पायेगा। लेकिन अब जब ये खदानें बंद हो गयी हैं और हालात बेहतर होने लगे हैं तो पूरा गांव स्व. पिताजी को एक योद्धा के रूप में याद करता है। अब हमारा गोचर बढ़ गया है। गांव में सुख-शांति लौट आयी है।

गोवर्द्धनपुरा निवासी श्री **महेश शर्मा** कहते हैं : खान मालिकों ने हमें ढेर सारे प्रलोभन दिये थे। लेकिन हम **तरुण भारत संघ** से ऐसे जुड़े कि आज तक हमारा जुड़ाव बना हुआ है। जंगल की खदानें बंद कराने में तो हम सफल हो गये हैं। अब गोचर तथा सवाई चक में भी खदानें बंद करानी हैं। हमने खदान मालिकों के खिलाफ जो लड़ाई लड़ी है, जो जंग लड़ी है, उसे समाज, हमारा देश-प्रदेश भुला नहीं पायेगा। हम थोड़े से लोगों ने ताकतवर माफिया को मात दे दी है। अरावली चेतना पदयात्रा के दौरान हमने अपने इलाके की कहानी जगह-जगह सुनायी। इसने पूरी अरावली में नदी-पहाड़ बचाने की चेतना जाग्रत कर दी है। अब **तरुण भारत संघ** के काम से भगाणी-तिलदेह नदी पूरे साल बहने लग गयी है। यह हमारे लिए किसी चमत्कार से कम नहीं है। हमारी बस यही कामना है कि अब यह कभी नहीं सूखे।

तिलवाड़ी निवासी **छोटेलाल मीणा** कहते हैं : 1986 में क्यारा गांव में अपनी रिश्तेदारी में गया था। वहां **तरुण भारत संघ** के बारे में पता चला था। फिर इनके द्वारा किये गये कामों को देखने का मौका मिला था। इनकी मदद से एक जोहड़ अपने गांव में मैंने भी बनवाया था। सपना यह देखा था कि इससे हमारे कुओं में पानी हो जायेगा। पर हुआ नहीं। दो-दो बरसातें आकर चली गयीं। तब जाकर समझ में आया कि सारा पानी तो खदानों के गड्ढों में चला जाता है, जोहड़ में कहां से आये। इसी के बाद हमने खदान मालिकों के खिलाफ जंग छेड़ने का मन बनाया। इस जंग में हम जीत तो गये, पर कुछ बड़े नेता, अधिकारी और पूंजीपति अभी भी खदानें चला रहे हैं। ये भी बंद करवानी हैं। गांव के ही कुछ लोग लालच में नहीं फंस जाते, और पूरा गांव साथ देता रहता तो हम पूरी तरह कामयाब हो गये होते। पर हम जरूर सफल होंगे। अब पहले जैसी खराब हालत तो वैसे भी नहीं रही है। क्योंकि हमने जो पांच-छः जोहड़ **तरुण भारत संघ** के सहयोग से बना लिये हैं, इनसे कुओं में खूब पानी हो गया है।

तिलवाड़ के **रामगोपाल** दूकानदार कहते हैं : पहले तो ऐसा लगता था कि खदानें बंद हो जाने से हमारी आय कम हो जायेगी। लेकिन ऐसा हुआ नहीं है। आज हमारी आय पहले से अधिक हो गयी है। खेती की जमीन पर शुरू हो गयी खदानों के बंद हो जाने से हमने राहत की सांस ली है।

मांगीलाल बनजारा का कहना है : खान मालिक हमें गांठते ही नहीं

थे । उन्होंने हमारी नासमझी का नाजायज फायदा उठाया । उन्होंने हमें फुसलाकर हमसे **तरुण भारत संघ** के खिलाफ रैली निकलवायी । धौली खान पर संघ के महामंत्री पर हमला करने को उकसाया । हमें समझ तो आयी, पर देर से । **तरुण भारत संघ** के कार्यकर्त्ताओं ने हमें असलियत समझायी । हमें अपने किये पर पछतावा हुआ और हम इनके साथ लग गये । इनके सहयोग से हमने पारासर के पास खोह में बनजारों के खेतों पर छोटे-छोटे बांध बनाये । इससे खानों-खदानों में काम करने वाले मजदूरों को बहुत लाभ हुआ है । कभी के मजदूर भी अब मालिक बन गये हैं । खेतों में अब गेहूँ-सरसों की फसल लहलहा रही है । हमारे परिवारों के नौजवान अब बैलों का व्यापार करके प्रसन्न हैं । आराम का जीवन जी रहे हैं ।

सरिस्का के क्षेत्रीय वन अधिकारी श्री अमरसिंह कहते हैं : **तरुण भारत संघ** के प्रयासों से निर्मित बांधों-जोहड़ों के कारण अब भगाणी नदी बहने लगी है जिससे जंगली जीवों की सुरक्षा का काम आसान हो गया है । अब जानवर कहीं भी आसानी से पानी पी सकते हैं । अब शिकारियों की पकड़ में नहीं आ सकते ।

श्री तेजवीरसिंह, क्षेत्र निदेशक, बाघ परियोजना का कहना है : **तरुण भारत संघ** के प्रयत्नों से सरिस्का की खदानें बंद हो गयी हैं, लेकिन अभी भी कुछ लोग इस फिराक में हैं कि खानें फिर से चला पायें । अनापत्ति प्रमाण-पत्र मांगने के लिए हमारे पास लोग आते ही रहते हैं । अब हम पूरी जांच-पड़ताल करके ही उन्हें प्रमाण-पत्र देते हैं । उस पर यह उल्लेख जरूर कर देते हैं कि 7 मई 1992 की अधिसूचना की अनुपालना अवश्य होनी चाहिए । इसके बाद की जिम्मेदारी खान विभाग की होती है । सरकार की होती है । वैसे यह तो एकदम साफ है कि इस क्षेत्र में खदानें न चलें तो जंगल हरा-भरा बना रहेगा, क्योंकि पानी तो अब खूब हो ही गया है । जो खदानें बंद हो गयी हैं उनके आस-पास हमने क्लोज़र बनवाकर वृक्षारोपण और घास-बीज बोने की तैयारी का काम शुरू कर दिया है ।

क्या किया है इन नदियों ने ?

भगाणी-तिलदेह नदियों ने फिर से बहकर-उठकर एक जबरदस्त सामाजिक बदलाव को जन्म दिया है । बदलाव को सही अर्थों में समझने के लिए

जितना जरूरी **आज** पर पड़े असर का अध्ययन करना है, पर उससे भी कहीं ज्यादा जरूरी है नदियों के पुनर्जन्म की **प्रक्रिया** के दौर में शुरू हुई मनोवैज्ञानिक उथल-पुथल का अध्ययन करना। क्योंकि उथल-पुथल जिस तरह शुरू हुई, वह शुरू न हुई होती, तो संभवतया इन नदियों का जन्म भी नहीं हुआ होता। भारतीय किसान कमोबेश भाग्यवादी होता है, क्योंकि वह बादल और बरसात पर बहुत निर्भर रहता है। और ऐसे में अपने तमाम सुविचारित प्रयत्नों के बावजूद विफलता हाथ लगने पर वह इसे अपनी नियति मानकर संतोष कर लेता है। अपने मन को समझा लेता है। इसे समझौता कहें या समर्पण, उसके सामने और कोई चारा होता भी नहीं। रोने और कलपने से यदि चीजें ठीक हो पातीं, तब बात दूसरी होती। पर वैसा है नहीं। यह बात यथार्थ के तमाम खुरदरे अनुभवों से पुष्ट भी होती है। यह उल्लेख इसलिए जरूरी है कि खेतीबाड़ी और पशुपालन से अपनी ठीक-ठाक गुजर-बसर कर लेने वाले लोग जब इन दोनों ही स्थितियों में नहीं रह गये, तो यक-ब-यक मजूर की हैसियत में बदल जाने पर इनको पीड़ा तो हुई, अनहोनी जैसा कुछ नहीं लगा। इसे भी अपनी नियति मान लिया। इन्हीं के बीच के कुछ अधिक सचेतन लोग जब खान-खदानों के दुष्परिणामों को लेकर माहौल बनाने लगे, तो शुरू में इनको यह नहीं जंचा। पर संगठन की गतिविधियों को नजदीक से देखने और सक्रिय कार्यकर्ताओं की बातों के दम को तोल लेने के बाद इनके बीच कुछ हलचल शुरू हुई।

अक्सर यह होता है कि आधी रोटी से संतुष्ट न होने पर लोग पूरी रोटी का सपना देखने लगते हैं। पर ऐसा भी होता है कि पूरी रोटी की प्रत्याशा में आधी रोटी को लात नहीं मार देते। और यही दुविधा थी जिसने वैचारिक उथल-पुथल को जन्म दिया। वे यह तो समझने लगे थे कि जंगल के बेहिसाब कटने और खानों-खदानों के लालच-जन्मे दोहन ने परिवेश को प्रदूषित और प्रभावित करने के साथ-साथ उनके जीवन पर भी हमला किया है। पर उनको कोई सीधा साफ रास्ता नजर नहीं आ रहा था। जब जोहड़ों-बांधों की शृंखला ने धरती के भीतर ऐसी कीमियागिरी शुरू कर दी कि जल्दी ही नदियां फिर से प्रवहमान हो उठीं, तो उन्हें लगने लगा कि कुछ किया जा सकता है। यानी यदि संगठित प्रयत्न किया जाये, तो सामूहिक नियति को बदला जा सकता है। और यहीं से शुरू हुई खानों-खदानों के खिलाफ लड़ाई में उनकी सक्रिय भूमिका। पूरी रोटी की प्रत्याशा जब विश्वास में बदलने लगी, तो आधी रोटी की सुविधा त्यागने में उन्हें ज्यादा वक्त

नहीं लगा। यह दूसरी बात है कि खानों-खदानों के मालिक उनकी रोजी-रोटी की दुहाई देकर उन्हें उस लड़ाई से काटने, अलग करने की कोशिश करने लगे और इसी क्रम में इस लड़ाई को उन्होंने मजदूरविरोधी, मनुष्यविरोधी लड़ाई के रूप में चित्रित करने में भी कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। शहर के अखबारवाले अथवा बुद्धिजीवी जो भी समझते रहे हों, **इस अंचल के गांववालों के मन में अब इस लड़ाई को लेकर कोई दुविधा नहीं रह गयी थी। वे अब किसान और पशुपालक न रह पाने के कारणों की तह में नियति को नहीं बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के स्वार्थप्रेरित दोहन को देखने लगे थे।**

वे दिन कैसे घोर संकट के दिन रहे होंगे, यह कल्पना सहज ही की जा सकती है। पालपुर, रामपुरा, जयसिंहपुरा और पारासर के लोग बताते हैं कि वे इस लड़ाई के साथ सिर्फ उम्मीद की डोर के सहारे बंधे थे। मन में खूब-खूब यह आता था कि खानों-खदानों के मालिकों और सरकार के खिलाफ लड़ाई में जीत पाना कोई आसान काम नहीं है। पर जब-जब यह बात चेतना पर हावी होने लगती, तभी मन के किसी कोने से आवाज आती कि हम इस लड़ाई में निश्चित रूप से किला फतह कर लेंगे। इस लड़ाई का जो कानूनी पक्ष था, वह न्यायालय और सरकार के बीच **तू डार-डार मैं पात-पात** जैसा कुछ बन गया था। न्यायालय लोगों को पीड़ित मानकर उनके हक में फैसला करता, आदेश देता और दूसरी ओर खानों और खदानों के मालिकों की सरपरस्त सरकार कोई न कोई पेंच ढूंढ़ने में लग जाती। लोगों की एकता और सक्रियता को तोड़ने के लिए **तरुण भारत संघ** की गतिविधियों की प्रेरणाओं और निष्ठा के आगे प्रश्नवाचक चिह्न लगाने के प्रयास किये गये। पर यह श्रेय इन अनपढ़ लोगों की बुद्धि की तीक्ष्णता को ही जाता है कि वे बिना किसी के बताये-समझाये **दूध का दूध और पानी का पानी** कर पाये। आम तौर पर यह कहा जाता है कि संकट के समय बुद्धि सही ढंग से काम नहीं करती। **विनाशकाले विपरीतबुद्धिः**। पर इन लोगों ने अपने आपको इस मान्यता का अपवाद सिद्ध कर दिया और अब नतीजा सामने है। भगाणी-तिलदेह फिर से बहने लगी है। इसका सारा श्रेय गांववालों की एकजुटता, संगठन-क्षमता तथा घोर विपन्नता की स्थिति में भी धीरज न खो देने की विशिष्टता को जाता है। खान-खदानें बंद होने से लोग बेरोजगार तो हुए पर मालिक बन गये। जितनी भी जिसके पास जमीन थी, उसकी साज-संवार करना नदियों के पुनर्जीवन ने आसान बना दिया था। पशुपालन भी नये सिरे से और क्रमशः आगे बढ़ाते हुए पैमाने पर शुरू हो गया है।

किसी भी सामाजिक कर्म की सार्थकता और प्रासंगिकता की कसौटी यही हो सकती है कि जिस लक्ष्य समूह को केन्द्र में रखकर काम शुरू किये गये थे, उनका उसको किस-किस रूप में लाभ मिला है। आर्थिक लाभ उसे इस तरह के सामाजिक कर्म से जोड़े रखने की प्रेरणा देता है और यह सत्य भी उसके मन में बैठाने का काम करता है कि **मुक्ति अकेले में नहीं मिलती। कम से कम इस लोक में तो नहीं ही, और परलोक की मुक्ति का पता नहीं।** इस मायने में जोहड़ों, तालाबों और बांधों का काम पिटते-टूटते आदमी को सबल बनाने का काम है। इतना सबल कि वह चुनौतियों और जोखिमों से न घबराकर अपने से कहीं अधिक बड़ी सामाजिक शक्तियों से मुठभेड़ करने को तैयार हो जाये। और इस कहानी का बयान करते हुए हमें यह रेखांकित करने में खुशी हो रही है कि सबलीकरण की इस प्रक्रिया की जो चरम परिणति है, वह इस अंचल के लोगों के चेहरों पर पढ़ी जा सकती है।

यह था भगाणी-तिलदेह नदी के जलागम क्षेत्र में पड़ने वाले कुछ गांवों की लौटी हुई खुशियों का एक आंखों-देखा दृश्य। नदियाँ अपने साथ पानी ही नहीं लातीं, हजार-हजार खुशियाँ भी लाती हैं। वाल्मीकिरामायण में एक प्रसंग राम-भरत संवाद का है। राम भरत से प्रश्न करते हैं कि तुम्हारे यहाँ कृषि **नदी-मातृका** है या **दैव-मातृका** ? फिर स्वयं ही उत्तर देते हुए कहते हैं, यदि तुम्हारी कृषि **दैव-मातृका** है, तो एक न एक दिन तुम जरूर नरक के भागी बनोगे, क्योंकि कभी न कभी अकाल जरूर पड़ेगा। यदि तुम्हारी कृषि नदी-मातृका है, तो तुम पुण्य के भागी बनोगे। फिर भरत को आशीर्वाद देते हुए राम कहते हैं कि जब तक इस पृथ्वी पर नदी, पहाड़ तथा जंगल का राज्य रहेगा, तब तक तुम्हारी कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी।

रामायण के इस प्रसंग का संदेश यही है कि प्रकृति कीर्तिदायी हो सकती है, अगर उसको सहेजने का खूबसूरत इतिहास रचा जाये। नदी वह अविरल धारा होती है, जो कीर्ति को सात समंदर पार तक फैला सकती है। पानी हमारी कीर्ति को निर्मलता की कसौटी पर कसता है। वर्षों से सूखी पड़ी रही भगाणी-तिलदेह नदियां आज बहनी शुरू हुई हैं, तो शुरू हुई है उन गांवों की कीर्ति-कथा, जो भगाणी-तिलदेह के किनारे-किनारे बसे हुए हैं। ❑

खनन द्वारा किए गए विनाश का चित्र

तिलवाड़ी के जंगल में बना जोहड़ जहां से खनन विरोधी आंदोलन का सूत्रपात्र हुआ

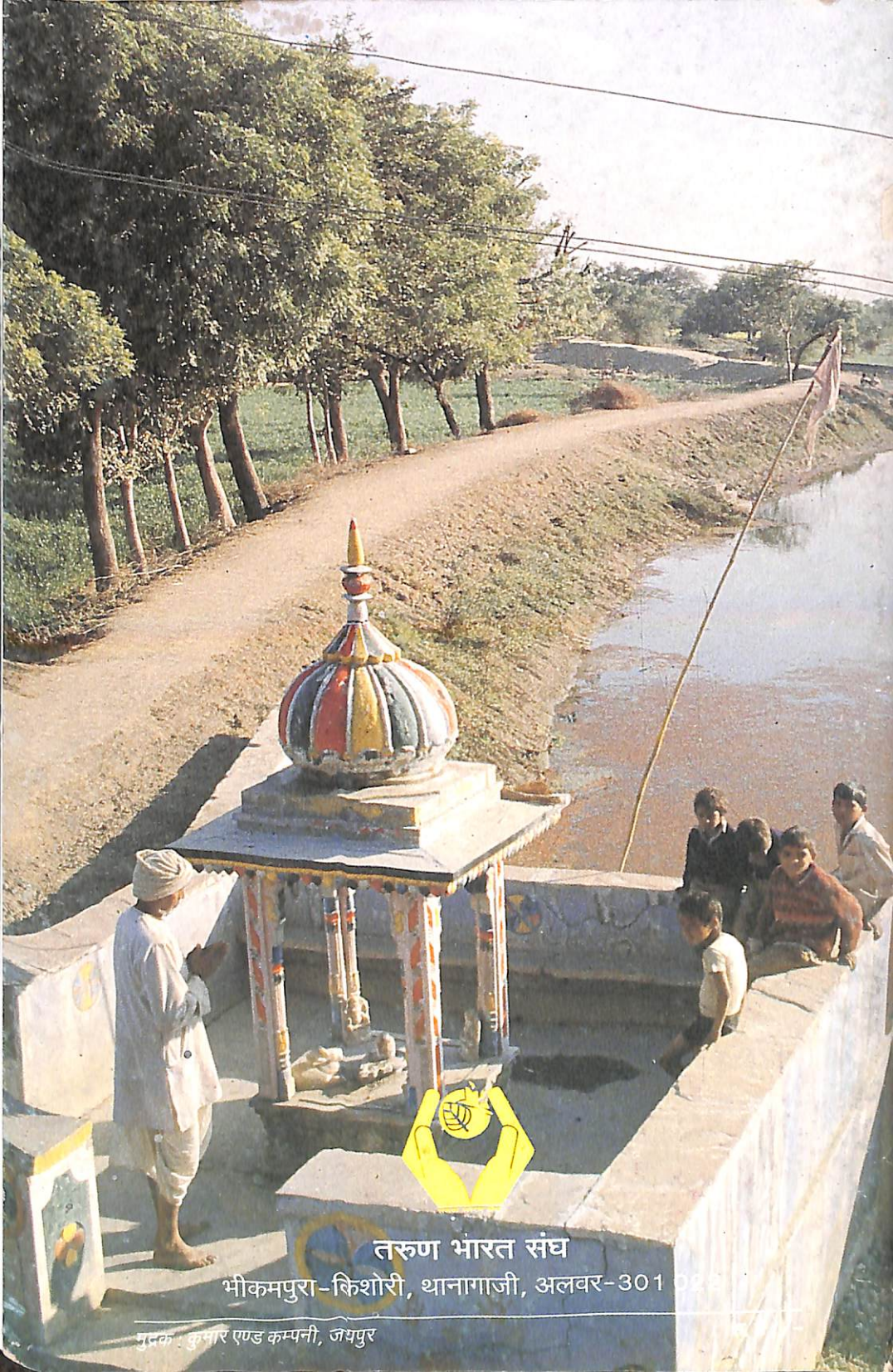

तरुण भारत संघ

भीकमपुरा-किशोरी, थानागाजी, अलवर-301 0[illegible]

मुद्रक : कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर